मछली-जाल

मछली-जाल

कृष्णचन्द्र

प्रगति प्रकाशन
नई दिल्ली।

अनुवादक : प्रकाश पण्डित

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्स, १४डी, फ़ीरोज़शाह रोड, नई दिल्ली।
नवीन प्रेस, दिल्ली।

मूल्य ३॥)

सूची

हुस्न और हैवान

सुबह की उड़ती-घुलती स्याही और सफेदी में वह एक छोटे-से नाले के निकट पहुँच गया और अपने कपड़े उतारकर नंग-धड़ंग नाले में घुस गया। पानी एक-दो जगह इतना गहरा था कि कमर तक आता था। पाँव कहीं कोमल, मुलायम रेत और कहीं पत्थरों पर फिसलते हुए मालूम होते थे। चंचल मछलियाँ अपने चाँदी के-से धड़ों को हिलाती हुई इधर-उधर घूम रही थीं। कई पत्थरों पर ज़र्दी, हरी या काली काई जमी हुई थी और जब नहाते-नहाते अनजाने में उसके पाँव उन पत्थरों से जा लगते तो उसके शरीर के रोम-रोम में एक विशेष प्रकार के वासनायुक्त आनन्द का अनुभव जाग उठता और वह आनन्दित हो मुँह में पानी भरकर ज़ोर-ज़ोर से गलो-गलो-गलो करता और कुल्लियों के छोटे-छोटे फव्वारे छोड़ने लगता, हँसता, गाता, पानी में नाचता और दोनों हाथों से छींटे उड़ाता, जैसे उसके सामने उसका गहरा मित्र या प्रेमिका खड़ी हो।

परन्तु नाले में उस समय उसके अतिरिक्त अन्य कोई न था। केवल एक चट्टान के किनारे एक लाल रंग का केकड़ा अपनी चीनियों की-सी आँखों से उसकी दिलचस्प हरकतें देख रहा था और उसके पागलपन से प्रसन्न हो रहा था। नाले के तीनों ओर ऊँची-ऊँची ाटियाँ थीं। चौथी ओर यह नाला बहता हुआ जेहलम नदी में जा

मिलता था। जेहलम के पार मरी के पहाड़ फैले हुए थे और उनकी छाती को चीरती हुई मोटर की सड़क एक बड़े नाग की श्वेत केंचली की तरह बल खाती हुई दिखाई देती थी। चुप्पी; पूर्ण निस्तब्धता। न मोटर की धूँ धूँ, न चीड़ के वृक्षों की सायँ-सायँ, न गुटारियों की करायँ-करायँ। नाले का पानी तक सोया हुआ मालूम होता था। हाँ, कहीं-कहीं चट्टानों के निकट पानी के गुज़रने से तरिल-रिल, तरिल-रिल का-सा स्वर पैदा होता था। परन्तु यह स्वर भी इतना मध्यम था कि चुप्पी में घुला-मिला मालूम होता था। वह आँखें बन्द करके पानी में डुबकी लगाता और पानी में डुबकी लगाते ही आँखें खोल देता और कुछ क्षणों के लिए जल के संसार का तमाशा देखता। फिर जब उसका श्वास घुटने लगता तो वह अपना सिर पानी के स्तर के ऊपर उठा लेता और उस तरिल-रिल, तरिल-रिल के मध्यम, मीठे स्वर को सुनता जो या तो वायु-मंडल की चुप्पी की प्रतिध्वनि थी या उसके तेज़ श्वास की लय या सुबह के कोमल ओठों का स्पर्श।

नहाते-नहाते जब उसे शरीर के रोम-रोम में बरफ़ की सुइयाँ-सी चुभती हुई महसूस हुईं और ऊपर उड़ते हुए बादलों के किनारे सूरज के उबलते हुए सोने से दमकने लगे तो उसे अपनी दिन-भर की यात्रा का विचार हो आया। बीस मील की लम्बी बाट। और उसे कल सुबह धलेर के मिडल स्कूल में मुख्य अध्यापक के पद का चार्ज लेना था। मार्ग अज्ञात था और कठिन भी। आशा थी कि मार्ग पूछता हुआ वह मंज़िल पर जा पहुँचेगा। कुछ देर के मानसिक असमंजस के बाद वह नाले से बाहर निकला। झोले से तौलिया निकाल कर बदन पोंछा। फिर नाश्ता निकाला और एक ऊँची चट्टान पर बैठकर खाने लगा। रोटी के छोटे-छोटे टुकड़ों ने जो बार-बार पानी में गिरते थे मछलियों को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और वे चट्टान के गिर्द इस प्रकार एकत्रित हो गईं जिस प्रकार चुम्बक के गिर्द लोह-चूर्ण के अणु एकत्रित हो जाते हैं। रोटी, उसने सोचा, संसार में सबसे बड़ा

चुम्बक है। और अब तो वह लाल रंग का केकड़ा भी अपने अगणित हाथ हिलाता हुआ, पानी में तैरता हुआ, उन टुकड़ों की ओर आ रहा था। बीस मील की यात्रा थी परन्तु इस यात्रा के आखिर में भी एक रोटी का टुकड़ा ही था जिसकी ओर वह खिंचा चला जा रहा था। एकाएक उसे लगा कि ये बीस मील बंसी के एक लम्बे तार की तरह थे जिसके सिरे पर एक हुक में रोटी का टुकड़ा लगा हुआ था। नाश्ता खाते-खाते उसने अपने आपको उस बेबस मछली की तरह पाया जिसके कण्ठ में बंसी का काँटा अटक गया हो। और वह खाँसने लगा और उसकी आँखों में आँसू भर आये। फिर वह मुस्कराने लगा अपनी कल्पना-शक्ति पर। ऊपर बादलों का रंग गुलाबी हो गया था। उनके पीछे एक सुनहला लावा-सा उबलता हुआ मालूम होता था। थोड़ी ही देर में यह उबलता हुआ लावा बादलों को फाड़कर बह निकलेगा और फिर दिन निकल आयेगा। अब उसे चलना चाहिये।

जब वह उठा तो केकड़े ने एक मछली को पकड़ लिया और अब वह अपनी चीनियों की-सी आँखों से अपने शिकार की ओर प्रसन्नतापूर्ण नज़रों से देख रहा था।

पहले पाँच मील की चढ़ाई बिल्कुल सीधी थी। पगडंडी बल खाती हुई ऊपर-ही-ऊपर चढ़ती जा रही थी, जैसे आकाश को छूकर ही दम लेगी। मूर्ख पगडंडी, भला आकाश को कौन छू सकता है? उसे पगडंडी पर बहुत क्रोध आया। यदि वह आराम से मजे-मजे में चली जाती तो न मुसाफिरों को थकान महसूस होती, न उनके श्वास की धौंकनी तेज़ होती, और न उनका शरीर पसीने से तर होता....परन्तु अब यही सब-कुछ था और पगडंडी की यह इच्छा एक कभी पूर्ण न हो सकनेवाली कामना-सी थी, क्योंकि वास्तव में आकाश कहीं भी नहीं है। इसकी वास्तविकता भ्रम की-सी है। जो वस्तु हो ही नहीं, उसे कोई क्योंकर पा सकता है; परन्तु पगडंडी....जो हो, मुझे विश्राम कर लेना चाहिये। उसने सोचा, उसे इसी पगडंडी पर बीस मील

चलना है। इस फगडंडी के पाप पगडंडी के मुसाफिरों को भी अपनी लपेट में ले लेते हैं। अंजील में स्पष्ट रूप से यही लिखा है। उचित यही है कि इस फगवाड़े के वृत्त के नीचे थोड़े समय के लिए विश्राम कर लिया जाय।

वह पहाड़ी अंजीर के वृत्त के तने से टेक लगाकर बैठ गया। उस वृत्त के सामने अंजीर का एक और वृत्त था। नीचे एक तलहटी थी, जहाँ दो छोटे-छोटे खेतों में मकई के पौदे उगे हुए थे। उससे परे बंज की बाड़ थी और उससे परे वही नीला आकाश और मरी के पहाड़ और उनकी छाती को चीरती हुई मोटर की सड़क। उसने उस दृश्य की ओर देखते-देखते यह मालूम कर लिया कि यह सारा दृश्य नकली था। नीले आकाश पर किसी अज्ञात चित्रकार ने ये कुछ आड़ी-तिरछी रेखाएँ खींच दी थीं। इनमें जीवन बिलकुल नहीं था। न सुन्दरता, न आकर्षण। फिर कहीं से एक लारी चींटी की तरह रेंगती मोटर की सड़क पर चलती नज़र आई। आकाश पर चील अपने पर तोलती नज़र आई, बंज की बाड़ से एक स्त्री और पुरुष बाहर निकलते नज़र आये और मकई के पौदों में घुस गये। सामने अंजीर के वृत्त पर दो चिड़ियाँ नज़र आईं और फुदक-फुदककर एक-दूसरे से चोंच मिलाने लगीं। अब चारों ओर हरकत थी, और थी बेचैनी-सी। स्थिर चित्र डोलने लगा था। चुप्पी में गान-सा उत्पन्न हो गया था। नीले आकाश में समुद्र की-सी गहराई....उसने सोचा भौतिकता से हरकत और हरकत से कल्पना जन्म लेती है। इस पगडंडी की कल्पना की ओर देखो। इसके साहस, इसकी दयालुता की प्रशंसा न करना एक अन्याय होगा और एक मैं हूँ कि आध घण्टे से यहीं सुस्ताने बैठा हूँ और अभी तक वे पुरुष और स्त्री खेतों से बाहर क्यों नहीं निकले। शायद खेतों की नलाई कर रहे हैं। चिड़ियों ने हँस-हँसकर कहा—चूँ—चूँ—चूँ। अर्थात् हम तुमसे अधिक जानती हैं। जाओ, अपनी राह लो और

हमारे रंग-में-भंग न डालो। वह घुटनों का सहारा लेकर उठा और आगे चल पड़ा।

पगडंडी का रंग पीला था। किनारों पर हरी घास सिर झुकाये हुए थी। कहीं-कहीं जंगली फूल खिले हुए थे, परन्तु मुर्झाये हुए-से, जैसे सफ़र की थकान से चूर हो गये हों। जैसे उन्हें प्यास लगी हो और उन्हें पानी देनेवाला कोई मौजूद न हो। वह आगे बढ़ता गया और उसकी प्यास चमकने लगी। पगडंडी अब एक ऊँचे खेत की मेंड़ के नीचे से गुजर रही थी। उसने सिर उठाकर देखा तो एक सुन्दर बकरी खेत की मेंड़ पर चढ़ती नज़र आई। उसने अपने सूखे ओठों पर ज़बान फेरी और बकरी ने सिर उठाकर एक नज़र उसकी ओर देखा और फिर "ऊँहूँ मैं" करके मुँह फेर लिया, जैसे कह रही हो "मियाँ आगे जाओ, यहाँ कहीं पानी नहीं है। मेरे थनों में जो दूध है वह मेरे मालिक के लिए है।" उसने टोपी उठाकर कहा—"बहुत अच्छा मादाम! तुम्हारा शरीर तुम्हारे पति के लिए है, तुम्हारा दूध तुम्हारे मालिक के लिए है, तुम्हारी आत्मा भारतीय नारी की आत्मा है। इस देश में प्यासे मुसाफिरों के लिए कोई ठिकाना नहीं। इसीलिए यहाँ सफर को एक मुसीबत समझा जाता है और काले पानी पार जाना तो एक पाप। बहुत अच्छा मादाम! योंही सही, क्षमा चाहता हूँ।"

प्यास से कण्ठ में काँटे-से चुभने लगे और यह पगडंडी अभी ऊपर-ही-ऊपर जा रही थी। रास्ते में उसे एक किसान मिला, उसने पूछा—"भई यहाँ कोई पानी का चश्मा है?"

"है तो सही, लेकिन यहाँ से कोई तीन मील ऊपर चढ़कर।"

"भई बहुत प्यास लगी है, कोई चश्मा निकट हो तो बता दो, बड़ी कृपा होगी।"

किसान ज़मीन पर बैठ गया। उसने अपनी लाठी से बँधी हुई गठरी को खोला और उसमें से एक केसरी रंग की मोटी-सी तरेडी निकाली। खूब रसदार थी और ताज़ा। उसने उसे पत्थर पर तोड़कर

उसके दो टुकड़े कर दिये। आधी तरेड़ी उसे देकर कहा—"पहले तो इसका रस पी जाओ बीजों-समेत, फिर रास्ते में इसकी फाँके बनाकर खाते जाना। भगवान् ने चाहा तो अब तीन मील तक प्यास नहीं लगेगी।"

खट्टा-खट्टा मज़ेदार रस जैसे गोलगप्पे बेचनेवालों के यहाँ होता है बीजों-समेत उसके कण्ठ में उतरता चला गया और उसकी आँखों में फिर चमक उत्पन्न हो आई। तरेड़ी का एक कतला-सा उतार कर खाते हुए उसने किसान को धन्यवाद दिया। किसान ने बड़े स्नेह से उससे पूछा—"कहाँ जा रहे हो?"

"मौजा घरेला"

"ठीक, यही रास्ता है।"

"और तुम कहाँ जा रहे हो?"

"मैं कोहाले जा रहा हूँ, सुना है वहाँ मोटर-सड़क पर बोझ उठानेवालों की ज़रूरत है। अबके फ़सल कुछ अच्छी नहीं हुई........"

लगान, रिशवत, नम्बरदार, बच्चे, बीबी..........किसान गठरी कंधे पर रखकर पगडंडी से नीचे उतर गया। यह चुम्बक के दूसरी तरफ थी या वही बंसी का काँटा जो मुक्ति पाने तक जीवन के कण्ठ में अटका रहता है। प्यास बुझ चुकी थी और वह तरेड़ी के कतले खा रहा था। एक सरींह के वृक्ष के नीचे एक बूढ़ा किसान और एक नन्ही-सी लड़की नज़र आये......."

किसान हँस-हँसकर मुर्ग़ा की बोली बोल रहा था—"कुकड़ूँ कूँ.... कुकड़ूँ कूँ।"

नन्हीं लड़की हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई—"अब्बाजी, एक बार फिर।"

"कुकड़ूँ कूँ—कुकड़ूँ कूँ"

मुसाफिर को तरेड़ी खाते देखकर वह मचल उठी, "अब्बाजी, मैं भी तरेड़ी खाऊँगी। मैं भी तरेड़ी खाऊँगी।"

मुसाफिर मुड़ा और सरींह के नीचे जाकर बैठ गया।

"सलाम, ओ राही" बूढ़े किसान ने कहा।

"सलाम बाबा"

"मैं तरेड़ी खाऊँगी अब्बाजी।"

मुसाफिर ने तरेड़ी का एक कतला लड़की के हाथ में दे दिया। लड़की के गुलाबी कपोल चमक उठे। उसने उसे अपनी गोद में ले लिया। वह बड़े मज़े से उसकी गोद में बैठकर तरेड़ी खाने लगी।

"कितनी प्यारी लड़की है! यह तुम्हारी लड़की है न? क्या नाम है इसका?"

"ज़री! (अर्थात् नन्हीं), जी यह मेरे बेटे की लड़की है; लेकिन मुझे अब्बाजी कहती है, क्योंकि मेरा बेटा लाम पर गया हुआ है। यह उस समय तीन-चार महीने की थी।"

लाम, जंग, यह सुन्दर गोल मुखड़ा, गुलाबी कपोल, चमकती हुई मासूम आँखें, मशीनगनों की तड़ातड़, चीखते हुए बम और तारों पर उलझी हुई आँतें। उसने सोचा, कुछ प्यासें ऐसी भी होती हैं कि उन्हें बुझाने के लिए मनुष्य मनुष्य के कतले कर डालते हैं। बिल्कुल इसी तरेड़ी की तरह। परन्तु तरेड़ी तो एक निर्जीव वस्तु है और मनुष्य एक गतिशील शोला। भौतिकता से गति और गति से कल्पना जन्म लेती है; परन्तु मनुष्य की कल्पना को देखो और फिर इस पगडंडी की कल्पना को। चुम्बक के दो भिन्न भाग।

बूढ़े ने चिल्लाकर कहा—"कुकड़ूँ कूँ।"

तीन मील ऊपर चढ़कर वह एक चश्मे के किनारे पहुँच गया। वृक्षों के झुंड में बहुत-से राही बैठे हुए थे। चश्मे के किनारे लकड़ी का नल लगा हुआ था जिसमें से पानी एक मोटी-सी धार बनकर नीचे गिर रहा था। उसने अपनी ओक उस मोटी धार के नीचे रख दी और पानी पीने लगा। पानी उसके कण्ठ से नीचे उतर रहा था। पाँव धोकर और ताज़ा दम होकर वह वृक्षों के झुंड की ओर चला गया। यहाँ

बहुत-से लोग बैठे हुए थे। कई-एक खाना तैयार कर रहे थे। कुछ लोग बनिये की दुकान से आटा और गुड़ खरीद रहे थे जो वृक्षों के झुंड के निकट ही थी। एक घास के टुकड़े पर कुछ-एक खच्चरें चर रही थीं और उनका मालिक उन्हें दाने के लिए पास बुला रहा था। एक राही मकई की रोटी गुड़ के साथ खा रहा था और तीन कौर खा चुकने के बाद पानी के दो घूँट पी लेता था। मकई की रोटी लगभग हरेक के पास थी। किसी के पास पिसा हुआ नमक-मिर्च था तो किसी के पास प्याज़। हाँ, सालन किसी के पास नहीं था। न अचार, न मुरब्बे, न मक्खन। ये लोग खच्चरों की तरह बड़ी तन्मयता से अपने जबड़े हिलाने में व्यस्त थे।

उसे मालूम था कि मकई की रोटी इतनी खुश्क होती है कि मुँह का लुआब उसे तर करके कण्ठ से नीचे उतारने के लिए काफ़ी नहीं होता। इसीलिए तो बार-बार पानी पिया जाता है। जब सालन मौजूद न हो तो पानी ही सबसे अच्छा सालन होता है। एक हज़ार वर्ष की सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के बाद भी मानवीय सभ्यता इससे अधिक कुछ न कर सकी थी कि मानव की अधिक आबादी को खुश्क रोटी और पानी दे सके। खुश्क रोटी और पानी, और खच्चरों की तरह चलते हुए जबड़े और प्रकाशहीन आँखें। उसने चुपड़ी हुई लचकीली गेहूँ की रोटी पर मुरब्बा लगाते हुए सोचा कि वह आज इन वृक्षों के झुंड में बैठे हुए किसानों को मक्खन, अचार और मुरब्बा बाँटकर हज़ारों साल की परम्पराओं को तोड़ देगा। फिर उसने सोचा कि अभी पन्द्रह मील और सफ़र करना है और फिर हजारों साल की भूख मुरब्बे के एक छोटे-से टुकड़े से तो मिटाई नहीं जा सकती।

जब वह अपना थैला बंद करके चलने को था तो उसकी नज़र लोगों की एक टोली पर पड़ी जो ऊपर पगडंडी से चश्मे की ओर आ रही थी। दो आदमी, जिनके सिरों पर लाल और नीली पगड़ियाँ थीं, जिन्होंने ख़ाकी रंग के वस्त्र पहन रखे थे और जिनके कंधों पर पीतल के चमकते

हुए बिल्ले लगे हुए थे, एक नौजवान किसान को अपने बीच पकड़े ला रहे थे। कुछ देर के बाद उसने देखा कि उस नौजवान के हाथ उसकी कमर पर हथकड़ियों में बँधे हुए हैं उनके पीछे-पीछे एक और आदमी चला आ रहा था और उसके साथ एक लड़की थी और वह उस लड़की से मुस्करा-मुस्कराकर बातें कर रहा था। लड़की की आँखें झुकी हुई थीं और चाल उखड़ी-उखड़ी-सी। जब वे वृक्षों के झुंड के निकट पहुँचे तो सारे किसान राही उनके आदरस्वरूप उठकर खड़े हो गये। बनिया भी अपनी दुकान से बाहर निकल आया और हाथ जोड़कर उनके सामने जा खड़ा हुआ। फिर उनके लिए दुकान से दो चारपाइयाँ निकाल लाया और उन पर उजली चादरें बिछाकर उन्हें बैठने के लिए कहने लगा। उनकी नज़रों का अभिमान और बात करने का ढंग कहे देता कि वे किसी ऐसी अनुभूतिपूर्ण शक्ति के मालिक थे जो अन्य लोगों को प्राप्त नहीं थी। एक आदमी ने जो उन सबका सरदार मालूम होता था, लड़की को परे एक वृक्ष के नीचे बैठने को कहा और फिर उसने उन दो आदमियों से सम्बोधित किया जो उस नौजवान किसान को पकड़े हुए थे।

"अबे दुल्ले! शाहबाज़! इस हरामी की हथकड़ी ज़रा ढीली कर दो और इसे पानी वगैरा पिलाओ।"

बनिया बोला—"हज़ूर, जल लाऊँ! ठंडा मीठा शर्बत, कोहाले से नई मिसरी मँगवाई है।"

दुल्ला और शाहबाज़ किसान को उसी प्रकार हथकड़ियों से जकड़े चश्मे के पास ले जा रहे थे जहाँ पहले ही एक खच्चरवाला अपनी खच्चर को पानी पिला रहा था।

हज़ूर ने उत्तर दिया—"हाँ, हाँ शाहजी, शर्बत पिलाइये, बहुत प्यास लगी है और खाना भी यहीं खायँगे। कोई मुर्गा वगैरा है?"

"जी हज़ूर, सब इन्तज़ाम हुआ जाता है।" बनिये ने हाथ जोड़ते हुए, बत्तीसी निकालते हुए, सिर हिलाते हुए कहा।

खच्चरवाला खच्चर को पानी पिलाकर उस पर सामान लादने लगा और दुल्ला और शाहबाज़ नौजवान किसान को पानी पिलाकर वापस ले आये और उसे अपने सरदार के सामने बिठा दिया।

हजूर ने किसान से कहा—"कान पकड़ो, मैं कहता हूँ हरामज़ादे, कान पकड़ो।"

किसान ने अपनी बाहें टाँगों के नीचे से गुज़ारकर कान पकड़े। दुल्ले ने पत्थर की एक बोझल सिल उसकी पीठ पर रख दी। कान पकड़नेवाले जानवर के मुँह से 'हाय' निकली। लड़की के ओंठ काँप रहे थे। हजूर शर्बत पी रहे थे। एक-दो घूँट पीकर बोले—"शाहबाज़, इसकी पीठ पर एक और सिल रख दो।"

लड़की की आँखों से आँसू बह निकले और उसने अपना मुँह लाल सोसी के दुपट्टे में छिपा लिया।

ऐसा मालूम होता था जैसे किसान की पीठ दोहरी होकर टूट जायगी। हजूर ने पूछा—"बोल, अब भी इकबाल करता है कि नहीं। तू इस नाबालग लड़की को अग़वा करके लाया है या नहीं।"

"नहीं" किसान ने रुक-रुककर कहा "यह नाबालग नहीं, अपनी मर्ज़ी से आई है।"

"अबे मजनूँ के साले, अब भी बराबर इन्कार किये जाता है। शाहबाज़! इसकी कमर पर एक और पत्थर रख दो।"

खच्चर घबराई हुई नज़रों से उस दृश्य को देख रहा था। राहियों के रंग उड़ गये थे। ये सब लोग भी किसी अनुभूतिपूर्ण शक्ति के अधीन मालूम होते थे। लड़की ने चिल्लाकर कहा "इसे छोड़ दो, मैं तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, इसे छोड़ दो, यह मर जायगा। इसका कोई दोष नहीं। मैंने ही इसे कहा था और यह मुझे भगा लाया है। असल में मैं इसके साथ भागकर आई हूँ—मैं ही इसे भगाकर लाई हूँ।"

हजूर ने मुस्कराते हुए कहा—"देखो, देखो, कैसी वकीलों की-सी

बातें करती है। तेरी सब शोखी निकाल दूँगा। ज़रा ठहर, तो पहले मुझे इससे निबट लेने दे, क्यों-बे उल्लू के पट्ठे ?"

उल्लू के पट्ठे ने हाँपते हुए कहा—"मैं, मैंने कोई अगवा नहीं किया।"

"इसे इसी तरह रहने दो" हजूर ने फैसला सुनाया "जब तक हम खाना वगैरा खायँगे।"

यह कहकर उन्होंने मुँह फेर लिया और बनिये से बातें करने लगे, "मैं मौज़ा घैरकोट से आ रहा हूँ। यह किसान इस खूबसूरत लड़की को अग़वा कर लाया है, चार दिन से मारा-मारा इसकी तलाश में घूम रहा था। आज ये दोनों आशिक-माशूक हाथ लगे। कोहाले से पार जाने की कोशिश में थे, लेकिन मैं इन्हें कब छोड़नेवाला था। मैं उस रास्ते को सूँघ लेता हूँ जहाँ से एक बार मुजरिम गुजर गया हो। अब यह बदमाश इकबाल नहीं करता, एक तो जुर्म किया उस पर यह सीना-जोरी।"

बनिया हाथ जोड़कर बोला—"हजूर, हम तो हजूर के जान-माल को दुआयें देते हैं। आप ही की कृपा से इलाके में बिलकुल शान्ति है। चोरी-चकारी, डकैती का लगभग खात्मा हो गया है। ये किसान लोग बड़े बेशर्म होते हैं। अब इसकी ओर देखिए। दूसरों की बहू-बेटियों को ताकना कहाँ की शराफत है और फिर उन्हें भगा ले जाना, राम! राम! हजूर ऐसे मुजरिमों को तो पूरी-पूरी सजा मिलनी चाहिए।"

हजूर ने उस नौजवान लड़की की ओर ताकते हुए कहा—"कानून यही कहता है शाहजी! हम तो कानून के बन्दे हैं। अगर कोई अग़वा करेगा या किसी की बहू-बेटी पर हाथ डालेगा तो हम उसे ज़रूर मुजरिम ठहरायेंगे और उसे सजा देंगे। वह मुरगा आपने अभी तक हलाल करवाया है या नहीं। शाहबाज! शाहजी से वह मुर्गा लेकर हलाल कर।"

नौजवान किसान का चेहरा ज़मीन से लगता जा रहा था। उसके

शरीर से पसीना बह रहा था। सब राही वहाँ से चल दिये थे, लेकिन उससे न जाने क्यों वहाँ से हिला न जाता था। उसने सोचा यह कोई अनुभूतिपूर्ण शक्ति थी जिसने उस नौजवान किसान को यों कष्ट झेलने पर विवश कर दिया था और यह बनियाँ इस किसान के कष्ट पर इतना प्रसन्न था। वह खच्चर क्यों ऐसी घबराई हुई नजरों से इस दृश्य को देख रहा था। एकाएक दो गुलदुमें एक झाड़ी से एक साथ उड़ीं और प्रसन्नता से चिल्लाती हुई आकाश में गायब हो गईं। ये गुलदुमें, उसने सोचा, एक दूसरे को अग़वा करके जाती हैं। एक-दूसरे के साथ भाग जाती हैं। एक दूसरे से प्रेम करती हैं परन्तु उनकी पीठ पर क्यों कोई पत्थर नहीं रखता और यहाँ क्यों उस मनुष्य की छाती पर पत्थर की सिल रख दी जाती है जिसकी छाती में अपने जैसे जीव के लिए प्रेम की ज्वाला जाग उठे ? यह कैसा अंधेर है।

शाहबाज ने मुर्गा पकड़ लिया। मुर्गा चिल्ला रहा था...कुकड़-कुकड़-कुकड़, कड़ें-कड़ें— उसे वह बूढ़ा किसान स्मरण हो आया जो अपनी पोती को मुर्गा की बोली सुना-सुनाकर खुश कर रहा था और जिसका बेटा लाम पर गया हुआ था। नौजवान किसान की सहन-शक्ति अब जवाब दे रही थी। उसका कण्ठ रुँध आया और वह कराहने लगा—"मेरे अल्लाह, मेरे अल्लाह।"

मेरे अल्लाह ! परन्तु अज्ञात दैवीशक्ति कौन थी ? किसान की यह आशा कि यह अज्ञात-शक्ति उसे बचायेगी। पगडंडी की कभी पूर्ण न होनेवाली कामना की-सी ही थी, क्योंकि वास्तव में आकाश कहीं नहीं है उसकी वास्तविकता भ्रम की-सी है। जो चीज हो ही नहीं, किसी को उससे सहायता कैसे पहुँच सकती है ?

लड़की एक बार जोश में आकर उठी और उसने पत्थर की सिलें अपने हाथ से परे दे मारीं। किसान पसीने में लथपथ उठ खड़ा हुआ और लड़की उसके गले से लिपट गई और रो-रोकर कहने लगी—"इकबाल कर लो, खुदा के लिए इकबाल करलो। मैं मर जाऊँगी,

तुम भी मर जाओगे," फिर वह हजूर से कहने लगी—"आप इसे कुछ न कहिए, मैं इकबाल करती हूँ कि यह मुझे अगवा करके लाया है, जबरदस्ती ! मैं इसके साथ रहना पसन्द नहीं करती। मैं इससे नफ़रत करती हूँ। मैं अपने माँ-बाप के पास वापस जाने को तैयार हूँ। आप अब इसे कुछ न कहिए। मैं हरेक आदमी के सामने यह बयान देने को तैयार हूँ, खुदा के लिए इसे छोड़ दीजिये।"

सेहपहर गुजरती जा रही थी। पहाड़ों के साये निचली वादियों को अपने अंधकार की लपेट में ले रहे थे। अब वह बहुत निढाल था। थकान से टखनों, पाँव के तलवों और घुटनों में हल्का-हल्का दर्द महसूस होने लगा था जैसे उसकी टाँगें लकड़ी की हों और हरेक जोड़ अलग-अलग हो। बहुत देर तक रास्ते पर वह अकेला चलता रहा। उसके विचारों में निराशायुक्त बेचैनी-सी और मस्तिष्क में पागलपन-सा रचता चला जा रहा था। मनुष्य अभी मनुष्य नहीं है। यह युद्ध जो स्वतंत्रता, सभ्यता और न्याय के लिए लड़ा जा रहा है संभवतः अन्तिम युद्ध न होगा। अन्तिम युद्ध शायद इस ज़ालिम भाव के विरुद्ध होगा जो मानव-प्रेम के सोते पर सिल रखकर जीवन के इस स्रोत को सदैव के लिए सुखा डालना चाहता है। परन्तु यह युद्ध कब लड़ा जायगा ? कब ? कब ? शायद तब तक वह जीवित नहीं रहेगा। शायद जीवित न होगा। अपने जीवन में वह प्रतिशोध के इस बेपनाह भाव से कभी टकरा न सकेगा जिसकी अतृप्ति से उसकी आत्मा का अणु-अणु काँप रहा था। दुःख और क्रोध से उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसके कदम बोझल हो गये। रास्ते में उसे मज़दूरों के कई काफिले मिले, जो नमक के डले उठाये, अपने घरों को लिये जा रहे थे। पहाड़ी देहातों में नमक इतना महँगा होता है कि लोग बनिये से खरीदने का सामर्थ्य नहीं रखते......सामर्थ्य ?......सामर्थ्य ? आखिर वे किस चीज़ का सामर्थ्य रखते हैं ? तो प्रेम का भी सामर्थ्य नहीं रखते उसने सोचा, उसे ऐसी कटु बातें सोचने का कोई अधिकार नहीं। वह

एक नौजवान है, खाता-पीता और अविवाहित। मिडल स्कूल का मुख अध्यापक। जीवन की समस्त प्रसन्नताएं उसे प्राप्त हैं। कल सुबह उसे अपनी नौकरी पर हाज़िर हो जाना है। लड़कों को पढ़ाना है... सच बोलो, माँ-बाप का आदर करो, अफ़सर की आज्ञा मानो, बड़े हो-कर आवारा न करो, यह बनिये की दुकान है, मुर्गा बोलता है, कुकड़ूँ-कूँ...।

एक खच्चरवाला अपना खच्चर लिए जा रहा था। खच्चर पर थड़ा पलान कसा हुआ था; परन्तु असबाब लदा हुआ नहीं था। शायद किसी जगह सामान पहुँचाकर वापिस लौट रहा था। उसने खच्चर-वाले से पूछा "कहाँ जा रहे हो?"

"खरन के दर्रे तक।"

"क्या यह मौज़ा घलेर के रास्ते में है?"

"हाँ, उससे पाँच मील परे।"

"मुझे इस खच्चर पर बिठाकर ले चलोगे? क्या लोगे?"

"जो जी में आये दे देना, मैं तो खच्चर वापस लिये जा रहा हूँ।"

"आठ आने"

खच्चरवाले ने 'हाँ' में सिर हिला दिया और वह कूदकर खच्चर पर चढ़ बैठा। खच्चर ने अपना बदन कुसमुसाया, कान हिलाये, नथने फड़फड़ाये और देखा कि अब कोई चारा नहीं तो चल पड़ा। खच्चर-वाला दुःख-भरे स्वर में गाने लगा—

"किसी की खाक में मिलती जवानी देखते जाना"

खरन के दर्रे पर उसने खच्चरवाले से बिदा ली और उससे रास्ता पूछकर आगे बढ़ा। चलते-चलते वह रास्ता भूल गया था, शायद उसने समझा कि वह रास्ता भूल गया है और किसी विचित्र संसार में आ निकला है। यहां पगडंडी एक तल्ले में खो जाती थी। इस स्थान पर जंगली गुलाब के फूल खिले हुए थे और नौजवान लड़-

कियाँ कंधों पर सोटियाँ रखे एक हरी-भरी चट्टान पर बैठी लाजो गा रही थीं—

लाजो आया, लाजो आया,
भला केहड़े के वेले आया लाजवा,
लाजो आया, लाजो आया,
चन्न महाड़ा चढ़या टिबियां दे ओहले ।१

उसे देखकर पहले तो वे खिलखिलाकर हँस पड़ीं, फिर शर्मा गईं और उन्होंने गाना बन्द कर दिया। राही एक लम्बा साँस लेकर उनके निकट बैठ गया और कहने लगा—"गाओ, और गाओ, मुझे लाजो बहुत पसन्द है" यह कहकर वह धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा—

"चन्न महाड़ा चढ़ाया टिबियां दे ओहले
कीकर आसां, भला जिदरियां दे ओहले वे लाजवा
लाजो आया, लाजो आया ।२

लड़कियों ने हैरान होकर पूछा—"तुम्हें लाजो आता है ?"

"हाँ, बल्कि मेरा तो नाम ही लाजो है" उसने हसकर झूठ-मूठ कहा—और तुम्हारा नाम क्या है ?"

एक ने कहा—"बानो ।"

दूसरी बोली—"बेरी ।"

उसने कहा—"अब तो लाजो गाओ ।"

बानो और बेरी कुछ क्षणों तक आपस में खुसर-पुसर करती रहीं। उनके तेवर कहे देते थे कि वे कोई शरारत करने जा रही हैं। फिर उन्होंने चंचल स्वर में गाना आरम्भ किया और वह अपने हाथों से ताल देने लगा—

---

१. मेरा प्रेमी लाजो आया है, भला कौन-से समय लाजो आया है, मेरा चाँद चट्टानों के पीछे से उदय हो रहा है।

२. मेरा चाँद चट्टानों के पीछे से उदय हो रहा है। परन्तु यहां ताले पड़े हुए हैं ऐ लाजो, मैं कैसे आऊं ? (अनु०)

लाजो आया, लाजो आया
भला केहड़े के वेवे आया वे लाजो
लाजो आया, लाजो आया........
भला जुत्ते गंडन आया वे लाजवा।

और वे खिलखिलाकर हँसने लगीं और राही भी उनकी हँसी में शामिल हो गया। कहने लगा—"अगर लाजो को बानो और बेरी के जूते गाँठने के लिए कहा जाय तो उसे कभी इन्कार न होगा" उस प्रशंसापूर्ण वाक्य के बाद उसने बानो और बेरी के गालों पर वे जंगली गुलाब के फूल खिलते देखे जो उसके निकट ही बेलों में टिके थे।

वह कुछ समय तक उनके गीत सुनता रहा और स्वयं भी गाता रहा। फिर जब सूरज पश्चिम के अस्ताचल पर झुक गया तो उसने चलने की ठानी।

बानो ने धीमे स्वर में कहा—"अच्छा आज यहाँ रह जाओ। हम तुम्हें अपने घर में जगह देंगे। तुम्हें सोने के लिए एक खाट चाहिए और एक कम्बल, ठीक है न।"

बानो के स्वर में हलका-सा कम्पन था और उसका मुख असाधारण रूप से लाल हो उठा था। बेरी ने चंचल नज़रों से राही की ओर देखा।

और राही ने उन पहाड़ी सुन्दरियों की ओर देखते हुए अपने मन से कहा। नहीं, यह बात ठीक नहीं है, मैं इन उलझनों में नहीं पड़ना चाहता। यद्यपि मुझे भी ऐसा लग रहा है जैसे मैं तुम्हें बचपन से जानता हूँ, मैं तुम्हारे साथ छुटपन से खेलता और प्रेम करता चला आ रहा हूँ। मैं शायद तुम्हारे बचपन का साथी हूँ। तुम्हारे लापर्वाह और अल्हड़ भाई का मित्र, तुम्हारे गीतों का लाजो। मैंने नदी के नीले जल में तुम्हारे साथ तैरते हुए तुम्हारे सुनहले बालों की चोटी को पकड़कर यों घसीटा है कि तुम चिल्ला उठी हो। तुम्हारे हाथों में अपना हाथ दिये मैं कई बार बटंग के वृत्त के गिर्द नाचा हूँ और मलोक तोड़कर खाये हैं। तरनारी के फूलों के हार बना-बनाकर एक-दूसरे के

गले में डाले हैं। कई बार जब चाँद अखरोटों के झुंड के पीछे से उदय हुआ है तो मैंने चाँदनी और अंधकार की काँपती हुई शतरंज पर तुम्हारी प्रतीक्षा की है। तुम्हारी लचकती हुई कमर में हाथ डाल कर तुम्हारे कुसमसाते हुए बदन को छाती से लगाया है। मैं इन फूलों की पंखड़ियों की तरह चंचल और कोमल ओठों का स्वाद जानता हूँ। तुम्हारे मध्यम श्वास की मिठास और काले नयनों में चमकते हुए मोतियों की आब से परिचित हूँ; परन्तु मैं इन उलझनों में पड़ना नहीं चाहता। मैं अपने हृदय में उस दीपक को सुरक्षित कर लेना चाहता हूँ जो शीशे की चारदीवारी से बाहर फूल की तरह सुन्दर पतंगों की ओर ताकता है और जलता और जगमगाता रह जाता है। राही ने नज़रें घुमाकर नीचे गाँव की ओर देखा। घाटी के नीचे गाँव एक मौन नदी के किनारे सोया पड़ा था। खेतों में मकई के पौदे चुपचाप खड़े थे। किनारों पर पीली-पीली घास किसान के हाथ और दराँती के संगीत की प्रतीक्षित मालूम होती थी। कच्चे घरों की छतों पर ऊदे रंग की बजरी ढलती हुई धूप में चमक रही थी। इन छत्तों के किनारों पर कहीं-कहीं पीली, सब्ज़ और सुर्ख अल्लें रखी थीं या गोल-गोल सुर्ख मिर्चें, राही ने......फिर नज़रें फेरकर बानो और बेरी की ओर देखा और पूछा—"मौजा घरेल यहाँ से कितनी दूर है?"

बानो ने उदास स्वर में कहा—"कोई तीन-चार मील।"

बेरी बोली—"दिन ढलता जा रहा है।"

राही उठ खड़ा हुआ, बोला—"अच्छा! अभी बहुत वक्त है, अगले गाँव पहुँच जाऊँगा।"

राही पगडंडी पर चलने लगा। यह पगडंडी घाटियों में से गुज़रती हुई चीड़ और और काऊ के जंगल में छिपती हुई कभी नीचे, कभी ऊपर आगे-ही-आगे जा रही थी। पहाड़ के अन्तिम मोड़ पर यह नीले आकाश के साथ मिल जाती थी। एकाएक उसे अनुभव हुआ कि पगडंडी की इच्छा एक कभी समाप्त न होनेवाली कामना नहीं थी।

उसे मालूम हुआ कि यह पगडंडी पहाड़ के कोने पर मुड़ नहीं जाती बल्कि सीधी नीले आकाश में से गुज़रती हुई आगे जा रही है। राही का हृदय किसी अज्ञात प्रसन्नता से परिपूर्ण हो उठा। उसने सोचा, क्यों न वह उसी मार्ग से होता हुआ नीले आकाश की पगडंडी पर चलता जाय। सौन्दर्य के किसी नये संसार में........उसे विचार आया कि पहाड़ का वह कोना, जहाँ यों देखने से यह पगडंडी समाप्त हो जाती है, एक अथाह झील का किनारा है, और वह सोचने लगा कि वह अपनी बलिष्ठ बाहों से अवश्य ही उसे पार करेगा। वह उसमें तैरता हुआ, नीले जल को उछालता हुआ आगे बढ़ता चला जायगा। या शायद यह नीला आकाश ही हो। तब भी वह उस सुन्दर आकाश की नीलिमा में वायु का एक हल्का-सा झोंका बनकर उड़ जायगा और चारों ओर फैलता जायगा और उसके मन की प्रसन्नता बढ़ती जायगी, यहाँ तक कि वह नीले आकाश की आत्मा में घुल जायगी। और राही को इस विचित्र प्रकार के अनुभव की प्रसन्नता में ऐसा लगा कि उस का शरीर हल्का, बहुत हल्का बन गया है और वह तेज़ी से पगडंडी पर छलाँगें लगाता हुआ दौड़ने लगा।

फिर एकाएक वह ठिठक गया और पीछे मुड़कर देखने लगा........

सूरज एक चोटी के पीछे अस्त हो रहा था। जंगली फूलों की बेलों का सहारा लिये दो सोने की मूर्तियाँ उसकी ओर ताक रही थीं। झुटपुटे की चुप्पी में उसके निकट से निकलती हुई वायु उदास-सी प्रतीत होती थी। उदास और मीठी, जैसे उसने जंगली फूलों की डंडियों का सारा मधु बाहर खींच लिया हो। सारे वातावरण में जंगली गुलाबों की सुगंध और सूर्यास्त की रंगीनी घुली हुई मालूम होती थी। वह कुछ देर तक वहाँ खड़ा उनकी ओर देखता रहा, फिर उसने बाँह घुमाकर उन्हें सलाम किया और मार्ग पर मुड़ गया।

परन्तु अब उसके मन की असाधारण प्रसन्नता में एक विचित्र प्रकार की उदासी भी आ बसी थी। उसके कदम भारी हो गये औ

वह चलते-चलते प्रसन्नता और दुःख की उन दोनों सीमाओं के बीच में खड़ा होकर सोचने लगा कि न ही औरतें सुन्दर होती हैं और न ही गुलाब के फूल बल्कि सुन्दर होते हैं समय के ऐसे ही कुछ-एक क्षण जो जीवन की अंधेरी रात में उज्ज्वल सितारों की तरह झिलमिलाते रहते हैं।

कब्र

वह कालेज में नया-नया प्रविष्ट हुआ था। पहले शायद मोगा कालेज में शिक्षा प्राप्त करता था। फिर जब उसका बड़ा भाई लाहौरके एक बैंक में नौकर हो गया तो वह भी लाहौर चला आया। वह बहुत शर्मीला था। छरेरे बदन का सुन्दर नौजवान, चौड़ा माथा, खिलता हुआ रंग, मुस्कराते हुए ओठ, वे ओठ जो शर्मीली मुस्कराहट के बावजूद हर समय किसी अज्ञात भाव के वशीभूत हो थरथराते रहते थे। क्लास में वह प्रायः पिछले बैंचों पर बैठता और सदैव एक कोने में। किसी ने उसे क्लास में शरारत करते कभी नहीं देखा। न वह लड़कियों पर चाक के टुकड़े फेंकता और न ही कभी कागज के हवाई-जहाज। और तो और, उसने कभी प्रोफेसर महोदय के लेक्चर के दौरान में एक पैसा तक श्रद्धांजलि के तौर पर प्रोफेसर की मेज़ पर न फेंका था।

और फिर एक दिन मुझे मालूम हुआ कि वह कवि भी है।

कालेज होस्टल में हमारे कमरे साथ-साथ थे। इसलिए हम बहुत शीघ्र ही एक दूसरे से घुलमिल गये। उसने मुझे बताया कि वह लायलपुर का रहनेवाला है। उसके गाँव का नाम माँमूकँजन है। वे सात भाई है। एक मुनीम, एक वकील, एक स्कूल-मास्टर, एक आढ़ती, एक बजाज, एक अफीम का सरकारी ठेकेदार और सातवाँ

और सबसे छोटा वह स्वयं एक विद्यार्थी था। छः भाई तो ब्याहे जा चुके थे और उनकी पत्नियाँ यद्यपि कुरूप थीं परन्तु 'दहेज' के सम्बन्ध में बहुत 'सुन्दर' सिद्ध हुई थीं। और अब उसकी बारी थी, बी० ए० पास करने के बाद।

शायद इसी बात ने उसे कवि बना दिया था।

शरद् ऋतु की चाँदनी रातों में जब बादलों के हल्के-हल्के टुकड़े, परीजादों की तरह आकाश में उड़ रहे होते और हल्की, कोमल और श्वेत चाँदनी का प्रतिबिम्ब होस्टल के कंगूरों को किसी परियों के महल के मीनारों की तरह ,अनुभूतिपूर्ण और सुन्दर बना देता, हम दोनों होस्टल की छत पर किसी बुर्ज में जा बैठते। मैं उससे पूछता—

"सच कहना, क्या तुमने कानन से अधिक सुन्दर और लज्जाशील लड़की नहीं देखी है? विशेषकर जिस दिन वह श्वेत साड़ी और श्वेत आवेजे पहनकर क्लास में आती है तो कैसी प्यारी मालूम होती है? धर्म से कहना, उस समय क्या तुम्हारा दिल यह नहीं चाहता कि एक छोटा-सा चाक का टुकड़ा इस प्रकार फेंका जाय कि उसके कानों के निकट उसकी श्वेत सारी के धारिये से छूता हुआ, उसे चूमता हुआ निकल जाय और एक चमेली के फूल की तरह उसके पैरों में जा गिरे ....धर्म से। क्लास-रूम में बैठे-बैठे श्रद्धांजलि भेंट करने का इससे अच्छा साधन और क्या हो सकता है क्यों कन्हैयालाल....और प्रिंसिपल और प्रोफेसरों की मूर्खता तो देखो कि हमें इस प्रकार की बातों पर भी जुर्माना करने से नहीं चूकते और 'बदमाश' और 'लफंगा' के खिताब अलग दिये जाते हैं। जी चाहता है...."

कन्हैयालाल कोई शेर गुनगुनाने लगा और फिर उसने धीमे, मध्यम स्वर में अपनी प्रेम-कहानी कह डाली। वह शर्मीला, पहला प्रेम जो एक नवजात कली की तरह पत्तों में छिपा रहा। उसके धीमे, मध्यम स्वर में वह मिठास घुली हुई थी जो उस पहाड़ी गीत में होती है जिसे जंगल की हवाओं ने किसी बालक चरवाहे के कोमल ओठों से

पहली बार सुना हो। उसकी आँखों में ऐसी लज्जा और ठहराव था जो प्रेमी की पहली नजरों में होता है। अपनी प्रेम-कहानी आरम्भ करने से पूर्व उसने एक बार पूरब की ओर देखा। उसकी आँखों की पुतलियाँ तारों की तरह चमक रही थीं।

"हमारे घर में पानी भरने का काम एक विधवा ब्राह्मणी करती है। उसकी एक लड़की है रुकमन!" कन्हैयालाल ने रुक-रुककर कहा—"रुकमन को तुमने नहीं देखा इसीलिए दिन-रात कानन की प्रशंसा किया करते हो। रुकमन का एक चाचा है जिसने रुकमन के बाप के मरने बाद उसकी सारी जायदाद पर कब्जा कर लिया है और लड़की और विधवा ब्राह्मणी को उससे वंचित कर रखा है। उसने अपने स्वर्गीय भाई के मकान पर भी कब्जा कर लिया है, केवल माँ-बेटी को दो कोठरियाँ दे रखी हैं! दोनों बड़ी विपत्ति में दिन काट रही हैं। दो-तीन घरों के बरतन माँजती हैं और पानी भरती हैं। हमारे यहाँ उनका बहुत आना-जाना है। वे बेचारियाँ जब हमारे घर आकर मेरी कुरूप भाभियों को अपने दुखड़े सुनाती हैं तो उन्हें बहुत दया आती है और प्रायः ऐसा भी होता है कि सुबह या शाम के समय रुकमन की माँ रुकमन के चाचा की करतूतों की नई कहानी सुना रही है। मेरे बड़े छः भाई भी उनके गिर्द एकत्रित हो गये हैं और रुकमन के आँसू-भरे नयनों की ओर देख-देखकर सहानुभूति जता रहे हैं। वे सदैव रुकमन को सम्बोधित करते हैं; उसकी माँ को नहीं—अर्थात् बात तो कह रही है रुकमन की माँ, परन्तु मेरे बड़े भाई जो सेठ रणछोड़लालजी के यहाँ मुनीम हैं, रुकमन से कह रहे हैं—

"अच्छा रुकमन! तू हमारे यहाँ चली आ। हम तुम्हें यहाँ कोई कष्ट न होने देंगे, है न।"

और फिर अन्य पाँचों भाई सिर हिलाकर कहते हैं—"हाँ, हाँ, हाँ; भला रुकमन की माँ और रुकमन तुम्हें अपने चाचा के यहाँ रहने की क्या ज़रूरत है, हमारे यहाँ आजाओ न, रुकमन!"

मानव-सहानुभूति के इस उत्कट प्रदर्शन के समय मेरी भाभियों की सूरतें देखने से सम्बन्ध रखती या फिर कभी यों होता कि रुकमन हमारे घर उदास और गमगीन सूरत बनाये आती और....

पहला भाई—"क्या बात है रुकमन ?"

दूसरा भाई—"रुकमन, क्यों, क्या बात है ?"

तीसरा भाई—"रुकमन ! उदास क्यों हो रुकमन ?"

चौथा भाई—"क्या किसी ने तुम्हें कुछ कहा है ?"

पाँचवें भाई की बारी आने से पूर्व ही रुकमन फूट-फूटकर रोने लगती और सिसकियों के बीच कहती जाती "चाचा ने आज फिर माँ को पीट डाला...चाचा ने....चाचा ने हूँ....हूँ...."

पाँचवें भाई ने गरजकर कहा—"चाचा ने मारा....? क्यों उसे क्या अधिकार है तुम्हारी माँ को पीटने का ? वह कहाँ से आया साला, हरामजादा, शुहदा ! क्यों जी, मैं पूछता हूँ उसे तुम्हारी माँ को पीटने का क्या अधिकार है ?"

और छटे भाई हाथों की मुठिया भींचकर कहते—'कम्बख्त आज रास्ते में कहीं मिला तो उससे पूछ लूँगा कि एक गरीब विधवा को किस तरह सताया जाता है।"

छठे भाई के लाल-लाल नेत्र देख कर रुकमन डर जाती और धीमे से कहती—"न, न भइया, तुम कहीं उन्हें मार न बैठना....फिर तो आफत ही आजायगी।"

और छठे भाई उसी 'आफत' आजाने के विचार में चुप हो रहते। यों भी हममें से कौन इतना दिलेर था जो रुकमन के चाचा से जाकर लड़ता। वह तो छटा हुआ बदमाश और विश्वासघाती था। उससे कौन लड़ाई मोल लेने को तैयार था। यह सहानुभूति का भाव तो मेरे भाइयों का मन केवल इसीलिए बार-बार तूफानी रूप धारण कर लेता था कि रुकमन एक बहुत भोली-भाली, अनजान, और अत्यन्त सुन्दर युवती थी और मेरे भाइयों की पत्नियाँ बहुत ही चालाक और कुरूप

थीं और फिर उन्हें आज तक अपने मध्यमवर्ग के सामाजिक जीवन में किसी सुन्दर लड़की से बातें करने और उससे सहानुभूति प्रकट करने का अवसर प्राप्त न हुआ था। जब वे बेचारे दिन भर के सिरतोड़ परिश्रम के बाद थके-माँदे घर आते तो अपनी मूर्ख फूहड़ पत्नियों को योंही छोटी-छोटी बातों पर लड़ते-झगड़ते देखते। इस बात की मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया तुम जानते ही हो एक ही रूप धारण कर सकती है।"

"प्रेम या वासना?" मैंने धीरे से पूछा।

"कुछ समझ लो", कन्हैयालाल ने उत्तर दिया—"यह एक ही भाव के दो भिन्न-भिन्न पहलू हैं। मेरे भाइयों को रुकमन से बातें करने में जो मजा आता था उसे प्राप्त करने के लिए और उससे आनन्दित होने के लिए वे भिन्न-भिन्न तरीके इस्तेमाल करते रहते थे। परन्तु यदि इन सब तरीकों को इकट्ठा करके इन्हें भावुक रूप में देखने से संकोच किया जाय और सामूहिक रूप से इन पर नजर डाली जाय तो वे सब तरीके एक क्रम....का रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरणतः सब भाइयों की यह कोशिश होती थी कि वे अपने वासना-भाव को एक दूसरे से छिपाये रखें। जहाँ तक हो सके रुकमन से उस समय बात की जाय जब अन्य कोई भाई वहाँ मौजूद न हो। रुकमन पर अपनी सहानुभूति, कुटुम्ब के अन्य प्राणियों से अलग-थलग होकर जताई जाय। यह सिद्ध किया जाय कि वास्तविक सहानुभूति केवल 'उसे' ही हो सकती है और अन्य भाई योंही दिखावे के लिए बातें बनाते हैं, इत्यादि...."

"और तुम" मैंने बात काटते हुए कहा "तुम सातवें भाई थे और शायद बहुत शरीफ़...."

कन्हैयालाल शर्मा-सा गया। कहने लगा "मैं तो उसे देखता ही रहता था और बस, यहाँ तक कि वह नज़रों से ओझल हो जाती। उस की बातें ही सुनता रहता, यहाँ तक कि वह चुप हो जाती और पाँव के अँगूठे से जमीन कुरेदने लगती। मैं तुम्हें क्या बताऊँ, मैं उसे कितना चाहता था, चाहता हूँ, रुकमन के आते ही मैं परेशान-सा हो जाता।

मैं उससे बात करना चाहता; परन्तु कर न पाता। बस टकटकी बाँधे उसकी ओर देखता रहता। मैं तुम्हें क्या बताऊँ, वह कितनी सुन्दर है और जब वह मुस्कराती है तो उसके ओठों की दाईं ओर एक अत्यन्त सुन्दर धनुष-सा बन जाता है जिसे देखकर मैं अकसर पागल-सा हो उठा हूँ।"

कन्हैयालाल रुक गया, फिर जरा ठहरकर बोला—

"पिछली गर्मियों की छुट्टियों में मैंने कई बार सोचा कि यदि मैं उसे रुकमन ! मेरी जान रुकमन, कहकर बुलाऊँ तो फिर क्या होगा। कहीं वह मुझे गाली तो न देगी। क्या वह अपनी माँ से तो जाकर न कहेगी ? अपने भाइयों और अपनी कुरूप भाभियों से तो मुझे कोई भय न था। आखिर मैंने निश्चय कर लिया कि रुकमन से बात करूँ। मैंने दिल में सोचा कि इस प्रकार मौन-प्रेम करने से तो मर जाना ही उचित है। आखिर होगा क्या, यही न कि वह मेरे प्रेम को ठुकरा देगी। मैं उससे कहूँगा और वह मुझे उत्तर देगी। जिसके उत्तर में मैं उसे यह कहूँगा और वह कहेगी कि मुझे तो डर लगता है। मैं कहूँगा डर कैसा ? रुकमन ! जब दो हृदय प्रेम करने पर तुल जायँ तो संसार की कोई शक्ति उन्हें नहीं रोक सकती। और फिर वह एक शर्मीली अदा से अपनी बाहें मेरे गले में डाल देगी और मैं प्यार-भरी नजरों से....

"एकाएक कुछ जरा खटका-सा हुआ। मैं चौंक पड़ा, सामने देखा तो रुकमन खड़ी थी, सिर पर पानी की गागर उठाये हुए। उसके माथे पर बालों की लटें बल खाये भीगी पड़ी थीं और उसकी लम्बी-लम्बी पलकें भी पानी के कतरों के बोझ से झुकी पड़ती थीं। बड़ी मुश्किल से उसने उन्हें ऊपर उठाकर मेरी ओर देखा और फिर कहा—"काहन जरा गागर तो उतरवा दो।"

मैं वहीं खड़ा-का-खड़ा रह गया। आज कितना अच्छा अवसर था। घर में कोई न था। न भाई न भाभियाँ। कुत्ते, बिल्लियाँ सब गायब

थे, बड़ी विचित्र बात थी। मैं एक घबराये हुए बतख के बच्चे की तरह रुकमन की ओर देखने लगा।

"मैंने कहा काहन (वह मुझे काहन कहा करती थी), ज़रा गागर उतरवा दो, खड़े-खड़े क्या देख रहे हो?"

मैंने गागर उतरवा दी।

रुकमन दालान के एक स्तून का सहारा लेकर खड़ी हो गई। वह हाँप रही थी। मुख लाल था, बाल बिखरे हुए थे।

"क्या कह रहे हो?" उसने योंही पूछ लिया।

"कुछ नहीं....कुछ नहीं।" मैंने एक अपराधी की तरह उत्तर दिया।

वह हँसी, यों ही एक मनोरम हँसी। जैसे किसी नर्तकी के पाँव के घुँघरू एकदम बज उठें।

फिर वह चुप हो गई और कुछ क्षणों तक पूर्ण चुप्पी छाई रही।

"भाभियाँ कहाँ हैं?" अब फिर रुकमन ने पूछा और अपने बाल सँवारने लगी।

"पण्डित झगड़ूराम के यहाँ कथा है, वहाँ गई हैं।"

"अच्छा!"

उसने 'अच्छा' कुछ इस प्रकार मध्यम और रहस्यपूर्ण ढंग से कहा कि मुझे अनुभव हुआ जैसे वायु का कोई हलका-सा झोंका नीम के नुकीले झूमरों में जीवन-संगीत फूँकते हुए निकल गया हो।

फिर थोड़ी देर के बाद उसने अपनी कमर को झटक दिया। अपने कंधों को झटक दिया, अपनी गर्दन को झटक दिया और सब-कुछ अचेतन अवस्था में हुआ। उसके बाद वह बोली—

"अच्छा काहन, मैं चलती हूँ।"

वह चली गई।

"ऐ ऐ रुकमन" मेरे मुँह से आप-ही-आप निकल गया।

वह ड्योढ़ी से लौट आई।

"क्या कहते हो?" उसका मुख बिल्कुल भोलाभाला और हर प्रकार के भावों से कोरा था।

मेरी आँखें झुक गईं और चेहरा भी लाल हो गया।

"कुछ नहीं, कुछ नहीं रुकमन!" मैंने धीरे से कहा।

वह कुछ देर तक वहाँ खड़ी रही; परन्तु मैं उससे नज़रें न मिला सका। फिर मैंने देखा कि उसके कदम धीरे से ड्योढ़ी की ओर मुड़ गये हैं।

वह जा रही थी।

अरे मूर्ख, गधे वह जा रही है।

मैं ड्योढ़ी की ओर लपका। वह उस तंग और अंधकारमय ड्योढ़ी में से गुज़र रही थी। मैंने दौड़ते-दौड़ते रुक जाना चाहा; परन्तु मेरे पाँव मुझे उसके पास ले ही गये। मैंने उसे बाहों से पकड़ लिया और काँपते हुए स्वर में कहा—"रुकमन, रुकमन मेरी बात सुनो" और इससे पूर्व कि वह मेरी बात सुनती मैंने अपने ओंठ उसके ओठों पर रख दिये।

रुकमन के बदन में सिर से पाँव तक एक झुरझुरी-सी आती हुई मालूम हुई। उसने बड़ी मुश्किल से अपने आपको मुझसे अलग किया और फिर मेरे मुँह पर एक तमाचा मारा और झट से ड्योढ़ी के बाहर निकल गई।

मैं रुकमन के पीछे दौड़ा। मूर्खों की तरह पीछे दौड़ रहा था और दिल में डर रहा था कि यदि उसने किसीसे कह दिया तो........
"रुकमन ज़रा रुको तो........तुम्हें परमात्मा की सौगन्ध, रुकमन!"

परन्तु रुकमन रोती रही। वह आँसू पोंछती आगे-आगे भागी जा रही थी और ज़ोर-ज़ोर से कह रही थी,"अभी माँ से कहूँगी, अभी चचा से कहूँगी, अभी चचा से कहूँगी............अभी तुम्हारे बड़े भाइयों से कहूँगी।"

"क्या हुआ रुकमन, तू मेरी बात तो सुन ले, तुझे देवीमाता की

सौगन्ध। अगर तू किसीसे कुछ कहे तुझे गाय माता की सौगन्ध।"

रुकमन ठहर गई और क्रोधित नेत्रों से मेरी ओर देखकर बोली—"ऐसी सख्त कसमें देते हुए तुम्हें शर्म तो नहीं आती।"

अब हम दौड़ते-भागते घर से दूर निकल आये थे। यहाँ छोटे-छोटे टीले थे और एक रेतीला मैदान जिसमें कहीं-कहीं आक की झाड़ियाँ उगी हुई थीं। परे एक वृक्षों का झुंड था और उसके पीछे रुकमन के चचा का घर। उस झुंड की ओट में सूरज अस्त हो रहा था और कौवे कायँ-कायँ करते पूरब की ओर उड़े जा रहे थे। सूरज की किरणों में उनके पंख सोने के बने हुए मालूम होते थे। मेरे सम्मुख रुकमन कमर पर हाथ रखे अजीब शान से खड़ी थी। उसके आँचल के तारों से सूरज की किरणें छन-छनकर आ रही थीं।

"फिर कभी छेड़ोगे?" रुकमन ने कोमल स्वर में पूछा।

"नहीं।" मैंने सिर हिला दिया।

वह एक टीले पर बैठ गई और पाँव से रेत कुरेद-कुरेदकर एक महराब-सी बनाने लगी। जब महराब बन गई तो उसने धीरे से अपना पाँव महराब के नीचे से निकाल लिया। अब रेत की महराब तैयार हो चुकी थी। रुकमन ने विजयी नज़रों से मेरी ओर देखा।

"यह क्या है?" मैंने मुस्कराकर उससे पूछा।

"यह तुम्हारी कब्र है।" रुकमन ने चंचलतापूर्वक कहा और फिर कहकहा लगाकर हँस पड़ी। चंचल लड़की चीख़-चीख़कर हँस रही थी।

"लाओ ज़रा देखें तो" मैंने उसे परे धकेलकर कहा और फिर लात मारकर रेत की महराब को ढा दिया।

"उफ़...." उसकी हँसी तुरन्त बन्द हो गई। "यह तुमने क्या कर दिया (हाथ बढ़ाकर) लगाऊँ एक तमाचा और......"

मैंने सिर झुकाकर कहा—"जरूर, अब एक नहीं एक सौ तमाचे लगाओ, अगर उफ़ कर जाऊँ तो कहना।"

वह घर जाने के लिए धीरे से मुड़ी और डूबते हुए सूरज की

लालिमा एकाएक उसके मुख पर पड़ी। उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक थी। जाते-जाते उसने मध्यम स्वर में कहा—"हम घर जाकर कहेंगे कि काहन बड़ा बदमाश है।"

इतना कहकर कन्हैयालाल रुक गया।

"फिर" मैंने बेसब्री से पूछा।

"फिर......." कन्हैयालाल ने धीरे से कहा—".......फिर गर्मी की छुट्टियाँ समाप्त हो गईं और मैं यहाँ चला आया।"

हम दोनों देर तक मौन रहे। हवा के हल्के-हल्के झोंके आ रहे थे और परे पीपल के वृक्ष की एक टहनी में चाँद एक टूटे हुए कंगन की तरह अटक गया था। नीचे सड़क पर एक पूर्बिया गाड़ीवान "पीतम क्यों भयो उदास, पीतम क्यों भयो उदास" गाते हुए और बैलगाड़ी चलाते हुए गुज़र रहा था।

बहुत देर के बाद मैंने कन्हैयालाल से पूछा "और रुकमन ?"

कन्हैयालाल मुस्कराकर बोला—"मेरे भाई अपनी गलतियों का खमयाज़ा मुझे भुगतने पर विवश नहीं कर सकते। उन्होंने रुपया चाहा उन्हें रुपया मिल गया। अब वे अपनी कुरूप पत्नियाँ देख-देखकर कुढ़ते हैं और चाहते हैं कि मेरी शादी भी किसी मोटी, साँवली, उजड्ड गँवारिन से कर दी जाय। परन्तु मैं रुपया नहीं प्रसन्नता चाहता हूँ और प्रसन्नता का नाम रुकमन है, और यह बात रुकमन भी अच्छी तरह जानती है।"

"यह बात है !" मैंने सिर हिलाकर कहा।

"हाँ।"

बात समाप्त हो गई और हम दोनों बुर्ज पर से उठ बैठे, परन्तु नीचे सड़क से गुज़रनेवाले गाड़ीवान के लिए अभी बात समाप्त न हुई थी। वह अभी तक गाता चला जा रहा था "पीतम क्यों भयो उदास, पीतम क्यों भयो उदास......."

मेरे लिए कालेज का जीवन बहुत शीघ्र समाप्त हो गया। बहुत

वर्षों के बाद मुझे एक दिन फिर कन्हैयालाल मिला। मैं लाहौर में सैर के लिए आया था। क्रिस्मिस के दिन थे और अनारकली में बड़ी चहल-पहल थी। योंही घूमते-घूमते कन्हैयालाल से भेंट हो गई।

"अरे!"

मैंने उसे बहुत मुश्किल से पहचाना। उसका खिलता हुआ रंग अब धुँए की तरह मैला हो गया था। आँखें भीतर की ओर धँसी हुई, ओठ सूखे और चेहरे पर छाइयाँ। शरीर सूखे हुए बाँस का सा हो गया था। उसने मुझे बताया कि वह एम० ए० इंग्लिश में प्रथम रहा था और अब लाहौर के किसी कालेज में प्रोफेसर था।

"मगर तुम्हें हुआ क्या?" मैंने हैरान होकर पूछा।

मेरा प्रश्न सुनकर वह धीमे परन्तु अत्यन्त कटु स्वर में बोला—"मैं समझता हूँ कि हिन्दुस्तान के आधुनिक सामाजिक जीवन में स्त्री को आदरसहित प्राप्त करना असंभव है। यहाँ विवाह होते हैं; परन्तु प्रेम नहीं होता। हमारे माँ-बाप हमें सब-कुछ क्षमा कर सकते हैं। हमारे सब अवगुण छिपा सकते हैं, कत्ल, चोरी, डाका, परन्तु वे कभी यह सहन नहीं कर सकते कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका बेटा किसी लड़की से प्रेम करने का साहस करे। परिणाम! परिणाम स्पष्ट है। रुकमन ब्राह्मण थी। उसे एक पचास वर्ष का बूढ़ा परन्तु धनवान ब्राह्मण ब्याह कर ले गया। मैं एक बनिया था, मेरे पल्ले एक चिड़चिड़ी, घिघिया-घिघियाकर बातें करने वाली बनियाइन बाँध दी गई। बूढ़ा ब्राह्मण कुछ मास हुए राम-राम करता इस संसार से चल बसा और अब सुन्दर बालिका—रुकमन विधवा है। माँ भी विधवा और बेटी भी विधवा। वह अब मैले वस्त्र पहनती है और सिर झुकाकर चलती है। जैसे अपने वृद्ध पति की मृत्यु का कारण वही हो।"

मैंने बात का रुख पलटना चाहा। मैंने धीरे से कहा—"सुनाओ, तुम्हारे बाल-बच्चे तो होंगे....राजी खुशी हैं?"

जैसे उसने मेरी बात का गलत अर्थ ले लिया हो। वह शिकायत-

भरी नज़रों से मेरी ओर देखते हुए बोला—"बच्चे पैदा करने का यह अर्थ कैसे हो सकता है कि मुझे अपनी पत्नी से प्रेम है। विवाह एक सौदा है। अन्य वस्तुओं की तरह लड़के-लड़कियाँ भी रुपये के ढेरों के बदले बेचे जाते हैं और यह ढंग आधुनिक सामाजिक जीवन के अनुसार है, और बच्चे......" वह एक कटु हँसी हँसकर बोला—"बच्चे तो एक सफ़ल विवाह का आवश्यक अंग हैं और परमात्मा का धन्यवाद है कि भारत में निन्यानवे प्रतिशत विवाह इस रूप से सफल होते हैं। तुम्हें मेरे बच्चों का हाल सुनकर आश्चर्य होगा, मैं छः बच्चों का बाप हूँ। रेंगते हुए बच्चे, बसूरते हुए बच्चे, चीखते-चिल्लाते हुए बच्चे" क्रोधपूर्ण नज़रों से मेरी ओर देखकर वह फिर बोला—"इसमें मेरा क्या दोष है? पच्चीस-छब्बीस वर्ष तक वासनाओं को दबाने के बाद यदि भारतीय युवक के जीवन में एक स्त्री आ जाय तो वह क्यों न चूम-चूम कर उसका हुलिया बिगाड़ दे। परन्तु शर्त यह है कि वह स्त्री हो। कोई-सी स्त्री, कानी स्त्री, गंजी स्त्री, एक स्त्री चाहे जिसकी शक्ल तुम्हारे कोठे के परनाले से अधिक सुन्दर न हो, परन्तु वह स्त्री अवश्य हो।"

उसका श्वास फूल गया और वह खाँसने लगा—"कोई बात नहीं, अब थोड़े दिन रह गये हैं। अब रात को मुझे बुखार भी हो जाता है। कभी-कभी खाँसी के साथ खून के कतरे भी आ जाते हैं। अब शीघ्र ही इस कैद से छूट जाऊँगा। परन्तु मुझे अपनी चिंता नहीं। मुझे चिंता है तो केवल यह कि मैं दिन-प्रतिदिन जितना दुबला हो रहा हूँ मेरी पत्नी उतनी ही मोटी होती जा रही है।"

मैं हँसा "भाई कन्हैयालाल, मालूम होता है तुम्हारा मानसिक संतुलन बिगड़ गया है। ज़रा किसी पहाड़ पर चले जाओ। जो होना था, हो चुका। प्रसन्न रहा करो। देखो तो, यहाँ कितनी चहल-पहल है। यह सुन्दर साड़ियाँ, लोगों के कहकहे, रोमांस और प्रसन्नता।"

"रोमांस और प्रसन्नता" कन्हैयालाल ने झुँझलाकर कहा

उसकी आँखें ज्योतिहीन-सी हो गईं और वह पहले से भी कुरूप नज़र आने लगा "तुम इन लोगों की प्रसन्नता का ग़लत अनुमान लगा रहे हो। ये लोग पैदा होने से पहले ही मर चुके हैं, इनका गला इनके माता-पिता ने स्वयं अपने हाथों घोंट दिया है। यहाँ न रोमांस है, न प्रसन्नता। ये तो चलती-फिरती लाशें हैं, लाशें।"

क्षण-भर के लिए वह रुक गया, फिर मेरी ओर विचित्र नज़रों से देखकर बोला—"तुम जानते हो जहाँ रोमांस और प्रसन्नता नहीं होती वहाँ क्या होता है....वहाँ होता है....धर्म, धर्म और केवल धर्म। अब रुकमन मुझसे बात तक नहीं करती। वह दिन-रात माला जपती है और अपने आपको और मुझे दोनों को पापी समझती है, हा, हा, हा!" कन्हैयालाल ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा।

कन्हैयालाल की हँसी से एकाएक मेरे शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। मेरे सारे शरीर में एक झुरझुरी-सी आई और मेरे शरीर के रोम-रोम को काँपता हुआ छोड़ गई। जाने क्यों, परन्तु यह वास्तविक है कि कन्हैयालाल के पिचके हुए गालों को देखकर मुझे रेत की वह क़ब्र स्मरण हो आई जो एक शाम सूर्यास्त के समय मामूकाँजन के एक रेतीले मैदान में एक पंजाबी युवती ने उसके लिए तैयार की थी।

उसकी खुशी

मिल के वार्ड में क्लाक ने बारह बजाये।

जग्गू ने अपने बिस्तर पर करवट बदली और धीरे से कहा—"सोगये अमजद ?"

अमजद के पीले चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखें खुलीं। उसके पतले और शुष्क ओठ काँपे और उसके दाहिने गाल पर का बड़ा-सा तिल स्याही का एक बड़ा-सा धब्बा मालूम होने लगा। उसने धीरे से कहा—"नहीं, कुछ सोच रहा हूँ।"

"क्या सोच रहे हो अमजद ?"

"यही कुछ अपने समाप्त होते हुए जीवन के बारे में।"

"यानी अपनी मौत के बारे में ?"

"नहीं, अपने समाप्त होते हुए जीवन के बारे में" अमजद ने कहा "मौत तो जीवन में आती है, और जब जीवन समाप्त होते-होते बिल्कुल समाप्त हो जाय तो मौत कहाँ ?"

"मैं कहता हूँ अमजद ! आखिर हम पैदा ही क्यों हुए ? मेरा मतलब है कि मेरा जीवन इतना फीका, व्यर्थ और बेमतलब रहा है कि कभी-कभी तो मुझे अपने बनानेवाले पर हँसी आती है....क्या तुम्हें भी आती है अमजद ?....कभी....कभी।"

जग्गू काफ़ी देर तक अमजद के उत्तर की प्रतीक्षा करता रहा। आज

उसे तीव्र ज्वर था। उसका माथा फुँका जा रहा था। उसे अपने गालों के स्याह गढ़ों में अंगारे-से भरे हुऐ मालूम होते थे। एकाएक वह खाँसने लगा और एक-दो मिनट तक बराबर खाँसता रहा। उस खाँसी ने उसके दोनो फेंफड़ों को छलनी कर दिया था।

जब उसकी खाँसी रुकी तो अमजद ने उसके प्रश्न का उत्तर दिया—"नहीं, कभी नहीं; मुझे तुम्हारे बनानेवाले पर विश्वास नहीं......हँसी कैसे आये ....और" वह चुप होगया।

क्षण-भर की चुप्पी के बाद जग्गू ने पूछा—"क्या सोच रहे हो अमजद ?"

अमजद ने कहा—"मेरे जीवन के तार तो एक समय से टूट चुके हैं। परन्तु आज कई भूली-बिसरी बातें फिर सता रही हैं। आज न जाने इन टूटे हुए धागों को क्यों फिर इकट्ठा कर रहा हूँ! क्या प्राप्त होगा ?"

एक लम्बे विलम्ब के बाद अजमद ने फिर कहा—"तुम्हें याद होगा, आज क्या तारीख़ है ?"

"हाँ, तेरह नवम्बर।" जग्गू ने उत्तर दिया।

अमजद ने धीमे स्वर में कहा—"आज के दिन मेरी शादी हुई थी। इस बात को दस साल होगये हैं।"

जग्गू और अमजद देर तक बाहर फैली हुई चाँदनी को देखते रहे। वार्ड के बाहर हरी घास के लान और फूलों की क्यारियाँ और उनसे परे अस्पताल की बड़ी दीवार के साथ लगे हुए पीपल की एक टहनी पर चाँद अपनी ठोड़ी टिकाये कुछ सोच रहा था। जग्गू की आँखों में आँसू भर आये।

जग्गू ने निराशापूर्ण स्वर में कहा—"मुझे आज तक किसी औरत ने प्यार नहीं किया।"

फीकी चाँदनी फीके और उदास-से फूलों पर बरसती रही और

क्लाक की टिक-टिक रात की चुप्पी में कीलें गाड़ती रही। टिक-टिक-टिक-टिक....

आज जग्गू का ज्वर तेज़ था। उसने ज़रा ऊँचे स्वर में कहा—"मैंने कुछ भी तो नहीं देखा" मैट्रिक पास करने के बाद जब मैं नौकरी की तलाश में जालंधर गया तो उस रात मास्टर ऊधमसिंह का व्याख्यान था। मैं तो सारे व्याख्यान के दौरान में रोता ही रहा। किसानों की जिस बुरी हालत का नक्शा उसने खींचा वह बिलकुल मेरी हालत के अनुसार था और जब उसने भारत की गुलामी का ज़िक्र किया तो मेरा खून खौलने लगा....उस समय मेरी आयु सोलह साल की थी। दूसरे दिन मैं गिरफ्तार कर लिया गया। मैंने नमक के कानून की अवहेलना की थी। जेल में मेरे साथ आदी मुजरिमों का-सा बर्ताव किया गया। दो साल चने और बाजरे की रोटी जिसमें भुसी मिली होती थी और मैला पानी। गर्मियों में वह हुबस कि ब्लैकहौल को भी लज्जा आ जाय और सर्दियों में वह ठंड कि फ़र्श पर थूक तक जम जाय। इन दो सालों में मेरे चेहरे पर से हँसी उड़ गई और उसकी जगह खाँसी ने लेली। पहले तो मामूली-सी खाँसी थी।"

अमजद ने कहा—"पहले मामूली-सी ही होती है।"

"फिर कभी-कभी ज्वर......"

अमजद ने कहा—"फिर खाँसी के साथ खून भी।"

जग्गू ने कहा—"मैंने दो बार भूख-हड़ताल की और उन्होंने मेरे नथनों द्वारा खुराक भीतर डाली जिससे मेरी नाक में घाव हो गये और मेरे फेफड़ों में वर्म......."

अमजद ने उदास स्वर में कहा—"इन बातों को दोहराने से क्या लाभ ? हम-तुम अपने देश के सिपाही हैं जो खंदकों की रक्षा करते-करते मर जाते हैं, जिनकी छाती दुश्मनों की गोलियों से छलनी हो जाती है, जिनकी आँतें जंग के जहाज़ पर लोहे के तारों पर उलझी रह जाती हैं। हम-तुम गुमनाम सिपाही हैं.......क्यों ठीक है न ?"

परन्तु चाँद ने कोई उत्तर न दिया। वह धीरे-से पीपल के पत्तों की घनी ओट में चला गया।

जग्गू ने पूछा—"लेकिन ऐसा क्यों हो? एक दिन जेल में मेरा जी गन्ना चूसने को चाहा और मेरी आँखों में अपने खेत घूम गये। मैंने देखा कि ईख के खेत तैयार हैं.......काट-काटकर गट्ठे बनाये जा रहे हैं। मेरा बाप बैलगाड़ी में बैल जोत रहा है और मेरी माँ (सिसकियाँ लेता है)....ईख के गट्ठे उठा-उठाकर बैलगाड़ी में रख रही है....फिर मैंने देखा कि कोल्हू में गन्नों का रस निकाला जा रहा है और एक ओर चमकते हुए अलाव पर कढ़ाई में ताज़ा, सोने-जैसा पीला गुड़ तैयार हो रहा है और मैं बेकरार हो उठा और मैंने वार्डर के आगे हाथ जोड़े और उससे कहा कि मुझे कहीं से थोड़ा-सा गुड़ ला दो और उसने मेरी पीठ पर लात जमाई। शायद मैं निर्धन था इसलिए। उसी जेल में हमारे कई साथी थे—हमारे नेता! वार्डर उनसे पैसे लेता था और उन्हें हर चीज़ ला देता था। डाक्टर भी उनसे हँस-हँसकर पेश आता था और वे तीन-तीन मास तक अस्पताल में दूध पी-पीकर मोटे हो जाते थे.......और फिर किताबें और समाचार पत्र और नहाने के लिए वलायती टब और असफ़ंज। मास्टर ऊधमसिंह को मैंने देखा कि हर रोज़ संदल सोप से नहाता था और मुझसे बात तक भी नहीं करता था। सुना है वह एक-दो बैंकों का भी मालिक है।"

अमजद ने कहा—"असल में हमारा नेतृत्व तो यही बैंक करते हैं। ये नेता लोग तो केवल चिल्लाते हैं जिस तरह तुम इस समय चिल्ला रहे हो। अगर इस समय नर्स आ जाय तो क्या कहे?"

जग्गू ने कहा—"क्या कहेगी? अब मैं किसी से नहीं डरता। हाँ, पहले-पहल जब मैं जीवित रहना चाहता था, मैं नर्सों और डाक्टरों की मिन्नतें किया करता था—परमेश्वर के लिए मुझे अच्छी दवा दे दो, मुझे किसी सैनेटोरियम में भेज दो। कर्नल अरबाकार मुझे छः

मास तक टालता रहा। उन छः मास में किसी सैनेटोरियम में कोई बैड (Bed) खाली न हुई। कोई भाग्यशाली नहीं मरा, मैं इस पर कैसे विश्वास कर सकता हूँ......लेकिन उन छः मास के बाद मैंने कर्नल से कहा। मैं अब सैनेटोरियम नहीं जाना चाहता। अब यही (Bed) मेरे लिए काफ़ी होगी। इस बीच में मेरा ज्वर तेज़ हो गया। मेरी खाँसी तीव्रतर और दोनों फेफड़ों को सिल के कीटाणुओं ने जर्जर कर दिया था.......और फिर तुम आगये........लेकिन तुम यहाँ क्यों आ गये ? मेरा तो कोई न था। जब मैं पहली बार दो साल के लिए कैद हुआ तो मेरी रिहाई से कुछ मास पूर्व ही मेरे माँ-बाप प्लेग से मर चुके थे। उन्होंने ज़मीन रेहन रखकर मुझे मैट्रिक पास कराया था.......और उनके एकमात्र बेटे ने उन्हें कितना अच्छा प्रतिफल दिया........?"

जग्गू सिसकियाँ भरने लगा और अमजद ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बन्द कर लीं।

काफी देर के बाद अमजद ने कहा—"तुम किसान के बेटे थे अपने देश के लिए मर मिटे। इसमें रोने की क्या बात है ? आज तुम्हारे बलिदान के बलबूते पर अपने भाई यहाँ राज्य कर रहे हैं। तुम्हें इस पर मान होना चाहिए।"

जग्गू बहुत देर तक खाँसता रहा। धीरे-धीरे जैसे उसका दम निकला जा रहा हो। फिर अमजद भी खाँसने लगा; परन्तु उसके फेफड़ों में अभी शक्ति थी इसलिए उसने शीघ्र ही अपनी खाँसी पर काबू पा लिया।

अमजद ने कहा—"डाक्टर अरवाकार ने मुझसे कहा है कि मेरा दूसरा फेफड़ा अभी सिल के कीटाणुओं का शिकार नहीं हुआ। और अब वह मुझे किसी सैनेटोरियम में भेजने का विचार कर रहा है।"

जग्गू ने कटु स्वर में कहा—"इस जीवन में यह असम्भव है।"

अमजद ने उदास स्वर में कहा—"न सही, मैं भी तो अब इस जीवन को समाप्त करना चाहता हूँ।"

जग्गू बोला—"अमजद, तुम मुझे चिढ़ाया न करो। क्या हुआ अगर मैं एक किसान का बेटा हूँ। मैं तुम्हारी तरह कवि न सही, लेकिन आखिर मैंने भी गाँव-गाँव की ख़ाक छानी है। घाट-घाट का पानी पिया है। प्रान्तीय नेताओं से लेकर बड़े-बड़े भारतीय नेताओं के व्याख्यान सुने हैं। तीन बार जेल गया हूँ। मैं कोई बच्चा तो नहीं। मैंने आज तक कोई ऐसा आदमी नहीं देखा जिसे अपने जीवन से प्रेम न हो। जिसे इस संसार के नीले आकाश, धरती की सोंधी सुगंध और स्त्री के इठलाते हुए यौवन से इश्क न हो......कोई भी इस जीवन को समाप्त करना नहीं चाहता। मैं स्वयं, जिसके पास मुट्ठी-भर हड्डियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहा, एक जोंक की तरह इस जीवन के साथ चिपका हुआ हूँ और तुम हो कि मरना चाहते हो........"

एकाएक वह मौन हो गया। धीरे-धीरे कदमों से नर्स लूसी उसके बिस्तर की ओर आ रही थी, युवा और सुन्दर लूसी। वह उसके सुंदर ओठों को देखकर पागल हो उठता था। उसकी सारी आयु जेलों में चक्कियाँ पीसते—और जेलों से बाहर जेलों से भी बुरे ग्रामों में व्याख्यान देते, जलसों में वालंटियरों का काम करते और जाति के नाम पर भीख माँगते व्यतीत हुई थी........इस चाँदनी रात में वह और भी सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उसे जेल जाने और अपने देश के लिए फ़ाके खींचने पर दुःख न था परन्तु काश! उसे क्षय रोग तो न होता। काश वह स्वस्थ रहता और सुन्दर लूसी के ओठ चूम सकता। वह सिर से पाँव तक काँपने लगा। उसके रोगी रक्त में एक वहशी संगीत का तूफ़ान लहरें लेने लगा। उसके कानों में बिजलियाँ-सी कड़कने लगीं। उसके गालों के स्याह गढ़ों में शोले लपकने लगे। काश, कोई उसे आज की रात केवल एक रात के लिए वास्तविक स्वास्थ्य की आग और पवित्र यौवन की गर्मी प्रदान कर देता, एक रात के लिए....

नर्स ने अपना गरम हाथ उसके माथे पर रखा और निद्रापूर्ण स्वर में कहा—"क्या तुम्हें नींद नहीं आती जग्गू ! सो जाओ, बातें मत करो, सो जाओ प्यारे जग्गू !"

जग्गू ने अपने काँपते हुए हाथ से नर्स की कलाई पकड़ ली। कुछ क्षणों तक उसका पतला, सूखा हाथ नर्स की कलाई पर जमा रहा, फिर धीरे से उसका हाथ तकिये पर गिर गया।

उसने नर्स से पूछा—"क्या आज मेरा ज्वर बहुत तेज़ है ?"

नर्स ने थर्मामीटर लगाया। ज्वर तेज़ था। नर्स ने उसे एक सुलानेवाली औषधि पिलाई और उसे सो जाने को कहा।

और वह धीरे-धीरे भटकती हुई, नींद की मारी, झूमती हुई चली गई। जग्गू और अमजद उसे देखते रहे यहाँ तक कि वह नज़रों से ओझल हो गई।

दो रोगी वार्ड के पश्चिमी सिरे पर खाँसने लगे और अमजद और जग्गू की छातियाँ भी दुखने लगीं। शीघ्र ही वे भी खाँसने लग गये। तीन-चार और रोगी भी जो सो रहे थे जागकर खाँसने लगे और थोड़ी देर तक वार्ड की चारदीवारी, रोगियों के खाँसने की आवाज़ से परिपूर्ण रही। फिर थोड़े समय के बाद चुप्पी छा गई।

अमजद ने पूछा—"जग्गू ! नींद आ रही है क्या ?"

जग्गू बोला—"नहीं, मैं सोच रहा हूँ। मेरी एक अभिलाषा ही पूरी हो जाती। मैं अपने देश को स्वतन्त्र देख लेता तो चैन से मरता और अब सोचता हूँ कि काश ! मैं एक बार किसी से प्रेम कर लेता और अपनी प्रेमिका को अपनी बाहों में लिपटा लेता। तुम तो कवि हो। क्या कहते हो इस सम्बन्ध में ?"

अमजद ने धीरे से कहा—"सच है, जब आदमी की बड़ी-बड़ी कामनायें पूरी न हों तो वह उनकी प्रतिक्रिया इसी प्रकार ढूँढ़ता है। मैंने प्रायः देखा है कि जब देश में आज़ादी की लड़ाई तेज़ी पर हो तो साम्प्रदायिकता दब जाती है और जब यह लड़ाई दब जाय तो यही

साम्प्रदायकता ज़ोरों पर आ जाती है.......जेल में भी मैंने इसी तरह कई बार उन बड़े-बड़े नेताओं को, जिन्होंने हर प्रकार के सुख-वैभव को छोड़ कर इस सेवा-मार्ग पर चलना आरम्भ किया था, शक्कर की एक डली के लिए झगड़ते देखा है। एक बार क्या हुआ कि जब मैं गुजरात जेल में कैद था एक बहुत बड़े नेता ने बाहर से अचार मँगवाया और वार्डर ने अचार को कागज़ में लपेटकर पाखाने की मोरी के रास्ते हमारे कमरे में दाखिल किया। लेकिन मैं क्या बताऊँ कि उस अचार के लिए भी कैसी-कैसी लड़ाइयाँ लड़ी गईं और हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख हरेक धर्म के नेता ने अचार को बड़े चाव से खाया........और आज तुम भी जो वास्तविक रूप में स्वतन्त्रता के पथ में रक्त के छींटे उड़ा चुके हो, एक औरत के ओठों के प्यासे नज़र आते हो........कहाँ स्वतन्त्रता....... कहाँ औरत के ओठ।..........मैं औरत के ओठों का मज़ा खूब जानता हूँ।

"क्या हुआ तुम्हें ?" जग्गू ने मुस्कराने की कोशिश करते हुए धीमे स्वर में कहा—"क्या तुम्हें औरत के ओठ पसन्द नहीं ? हाय ....कैसे आदमी हो तुम........किस मूर्ख ने कवि बना दिया.......?"

अमजद ने व्यंगपूर्वक कहा—"तुम्हारे बनानेवाले ने।"

जग्गू निद्रित स्वर में बोला—"अभी-अभी मैंने नर्स की कलाई को हाथ लगाया था। राम जाने ! मैं अभी तक उसकी गरमी, उसकी गुदगुदाहट, उसकी रेशमी कोमलता को नहीं भूल सका हूँ।"

अमजद ने कटु स्वर में कहा—"मुझे इन भावनाओं के महत्व का ज्ञान है। इन्हीं भावनाओं ने तो मुझे कवि बना दिया है। इन्हीं भावनाओं ने मुझे रज़िया से शादी करने पर विवश कर दिया था। आज के दिन ही मेरी शादी हुई थी—तेरह नवम्बर ! सुना है तेरहवीं तारीख़ बहुत मनहूस होती है; परन्तु उस दिन मुझसे अधिक भाग्यशाली कोई और व्यक्ति न था। उस दिन भी ऐसी ही चाँदनी थी। चीड़ के पत्तों के नुकीले झूमरों में वन की वायु मध्यम और मधुर गीत गा रही

थी और उस सुहानी रात में रज़िया ने और मैंने एक-दूसरे की बाहों-में-बाहें डालकर वे मधुर गीत सुने थे........"

जग्गू का श्वास तेज़-तेज़ चलने लगा। उसने पूछा—"फिर क्या हुआ ?"

अमजद ने कहा—"रज़िया को मैंने बड़ी कठिनता से पाया था। वह मरी के एक सरदार की बेटी थी, मैं एक अंग्रेज़ के बैरे का बेटा था.......कमीना और नीच.......लेकिन मेरे बाप ने मुझे एफ० ए० तक शिक्षा दिलाई थी और हमारे कबीले में मुझसे अधिक पढ़ा-लिखा और कोई व्यक्ति नहीं था.......रज़िया को मैंने बड़ी मुश्किल से पाया था और आज के दिन मेरी और उसकी प्रसन्नताओं का परस्पर मिलाप हुआ था।"

अमजद देर तक मौन रहा और जग्गू का हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कता रहा। आखिर अमजद ने कहा—"लेकिन औरत के ओठ मुझे स्वतन्त्रता के आन्दोलन से प्रथक् न कर सके। अंग्रेज़ के बैरे के बेटे ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया और उसे पाँच वर्ष की कैद हुई। रज़िया के बाप ने जो मरी का एक बहुत बड़ा सरदार था अपनी बेटी को मुँह तक न लगाया, क्योंकि उसकी सरदारी और जागीर राज्य की स्वामि-भक्ति का पुरस्कार थी। मेरा बाप एक बार भी मुझसे जेल में मिलने के लिए नहीं आया, क्योंकि वह अंग्रेज का बैरा था, परन्तु रज़िया तीन वर्षों तक जेल के दरवाज़े पर आती रही और उसके रसीले ओठ सूखते चले गये। सुन्दरता रोटी से उत्पन्न होती है और जब रोटी न मिले तो सुन्दरता मर जाती है।"

"अमजद........अमजद" जग्गू ने भयपूर्ण स्वर में कहा।

"परन्तु रज़िया ने अपनी सुन्दरता को मरने नहीं दिया।" अमजद ने पूर्ववत् उसी मध्यम स्वर में कहा.......ख्वाजा करीमुद्दीन को तो तुम जानते हो न ?"

जग्गू ने कहा—"कौन ? ख्वाजा करीमुद्दीन वही—जो बड़े ज़मींदार

हैं और १६३५ के बाद से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने लगे हैं ?"

"हाँ—हाँ—वही, वह हमारे साथ जेल में थे। तीन साल तक हम इकट्ठे रहे क्योंकि उन्हें तीन साल ही की सजा हुई थी और जब वह रिहा होने लगे तो मैंने डबडबाई आँखों से उन्हें रज़िया की सहायता करने को कहा........उन्होंने रज़िया की बहुत सहायता की........रज़िया अब भी बहुत सुन्दर है।"

जग्गू ने अमजद की ओर देखा; परन्तु अमजद ने आँखें बन्द कर लीं और वह कुछ न देख सका।

आखिर जग्गू ने काफी विलम्ब के बाद कहा—"अमजद भाई ! हममें बड़े-बड़े नेता हैं और देश के नाम पर मर मिटनेवाले शूरवीर भी; परन्तु फिर भी स्वतन्त्रता निकट नहीं आती। क्यों ? क्या इसलिए कि सचाई का ढिंढोरा पीटते हुए भी हमारे दिलों में सचाई नहीं, नज़रों में पवित्रता नहीं, साथियों के प्रति सहानुभूति नहीं।"

अमजद ने कहा—"लेकिन अब तो मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं—बिलकुल नहीं। न तुम्हारे बनानेवाले से, न ख्वाजा करीमुद्दीन से........रज़िया से भी नहीं........अच्छा ही है कि अब किसीके दिल में हमारी याद नहीं, चाह नहीं, आदर नहीं........।"

परन्तु थोड़े समय के बाद ही उसके धैर्य के बन्द टूट गये और वह अत्यन्त धीमे और भर्राये हुए स्वर में बोला—"लेकिन मेरे खुदा ! ....मैं आज की रात को नहीं भूल सकता........आज की रात ही तो मेरी आशाओं का संसार बसा था........आज की रात ही तो मैंने प्रसन्नताओं का मुख देखा था........यही चाँदनी रात थी........यही रात की चुप्पी........चीड़ का वृक्ष........फिर रात की चुप्पी बढ़ती गई। चाँदनी फैलती गई........अनसुने राग की चुप्पियाँ निद्रा की गहराइयों में उतरती चली गईं........समय का शोर थम गया........और जीवन की हर धड़कन प्रकाश के प्रवाह में आप-ही-आप बहती कहीं-की-कहीं चली गई........खुदा जाने........कहाँ........किधर ?"

जन्नत और जहन्नुम

ज़ेनी के सम्बन्ध में मैं क्या जानता हूँ, यह मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। मनुष्य की मनःस्थितियाँ समुद्र के ज्वार-भाटे की तरह मन के तट पर आती हैं और प्रायः अत्यन्त मध्यम और अस्पष्ट से नक्श छोड़ जाती हैं। और अक्सर ये अस्पष्ट-से नक्श लहरों के दूसरे ही रेले में यों मलियामेट हो जाते हैं कि फिर कोई उनका चिन्ह तक नहीं पा सकता, या फिर नये नक्श अपने नवीन रूप और सुन्दर-सम्पर्क से नवीन सुन्दरता उत्पन्न कर देते हैं और उनकी गोद में उस तट की रेत का हर अणु गुनगुना उठता है—"क्या इससे पूर्व भी जीवन था या यह जीवन संगीत की एक विकल लय ही है?"

परन्तु कुछ नक्श इतने मध्यम और अस्पष्ट नहीं होते और वे जीवन-तट पर ऐसे चित्र बना देते हैं जो एक समय तक कायम रहते हैं। ऐसे ही चित्रों में से एक चित्र ज़ेनी का भी है और वास्तव में एक ही नहीं बल्कि तीन। क्योंकि जब कभी मुझे ज़ेनी का ख़याल आता है, उसके तीन रूप मेरी आँखों के सामने आ जाते हैं। तीन भिन्न चित्र, नज़र के तीन भिन्न कोण। जिस प्रकार सात रंगों से मिलकर इन्द्रधनुष बनता है इसी प्रकार इन तीन चित्रों से ज़ेनी की जीवन-

कथा बन जाती है; परन्तु यह जीवन इन्द्रधनुष से बहुत भिन्न है—कहीं भिन्न।

देखने में तो ज़ेनी इन्द्रधनुष ही की तरह सुन्दर थी। मैंने जब उसे पहले-पहल देखा तो उस समय मैं सात पुलोंवाले शहर के सबसे सुन्दर पुल अमीराकदल पर झुका हुआ जेहलम के स्तर पर तैरते हुए संसार का निरीक्षण कर रहा था। यों ही बेकार-सा, आवारा-सा, उकताया हुआ, श्रीनगर की दिलचस्पियों को छिछली नज़र से देख रहा था। शिकारों के लाल लाल फूलों से कढ़े हुए पर्दे एक ओर को हटे हुए थे और उनमें कहीं मोटे-मोटे पुरुषों के साथ अप्सराओं जैसी औरतें सवार थीं जिनके चेहरे और जिनके सुनहले आवेजे दोपहर की धूप में एक ही तरह चमक रहे थे। कहीं विशालकाय सुन्दर नौजवानों के साथ भद्दी और कुरूप औरतें अपने सर्वोत्तम वस्त्र पहने बैठी थीं और अपने सौभाग्य पर गर्व करती हुई-सी प्रतीत होती थीं। जो औरतें जितनी अधिक कुरूप थीं वे उतनी ही अधिक सुन्दर और भड़कीला लिबास पहने हुए थीं। वास्तव में पर्दे की परम्परा तो इन्हीं औरतों के लिए चलाई गई थी और उनके पतियों के चेहरे कम-से-कम उस समय तो यही बात प्रकट करते थे। बेचारे दूसरे शिकारों में बैठी हुई सुन्दर औरतों को घूर-घूरकर अपनी हानि की पूर्ति करना चाहते थे और उनकी अपनी पत्नियाँ अत्यन्त कोमल और मृदु स्वर में हँस-हँसकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास कर रही थीं। कम-से-कम मुझे उनका स्वर बहुत मृदु मालूम हुआ। मृदु, जैसे कोयल की कूक और आखिर कोयल का रंग भी तो काला होता है।

शिकारे सुन्दर और कुरूप व्यक्तियों से लदे हुए थे; परन्तु उनमें जीवन की हरकत, बेचैनी, अधीरता सभी कुछ मौजूद था। वे पानी के स्तर पर भागे चले जा रहे थे। लाल-लाल पर्दे हिलते हुए दिखाई देते थे। भद्दी शक्लें सुन्दर चित्रों में परिवर्तित हो जातीं। कहकहे और हाँजियों के गीत एक ही संगीत बन जाते और वे शिकारे दरबार

हाल के सामने उसके श्वेत सतूनों के निकट पहुँच कर बीनस शहर का-सा दृश्य पेश करते हुए एकाएक मोड़ पर गायब हो जाते। परन्तु यह हरकत, यह जीवन, इन लम्बे-लम्बे दूसरे दर्जे के लोगों या हाउस बोटों में नहीं था जो पानी के स्तर पर चुपचाप बतखों की तरह तैर रहे थे। उनकी खिड़कियाँ बन्द थीं परन्तु पर्दे लटक रहे थे। केवल एक हाउस बोट में एक खिड़की खुली थी। खिड़की के दोनों ओर दो अंग्रेज औरतें बैठी स्वैटर बुन रही थीं। क्या ये लोग श्रीनगर में स्वेटर बुनने के लिए आते हैं या मेरी तरह पुल के जंगले पर झुककर केवल तमाशा देखने के लिए?

और फिर मुझे उस समय ज़ेनो दिखाई दी। जेहलम के पानी का एक ही रेला उसे मेरे मन के तट के निकट खींच लाया। वह एक छोटे-से डोंगे के किनारे पर बैठी डोंगे का रुख बदल रही थी। रुख बदलने का चप्पू उसके हाथ में था और चाँदी का एक 'झुमका' उसके कान में किसी मौन संगीत की गति पर नृत्य करता हुआ मालूम होता था। फिर जैसे वह बिजली की-सी तेज़ी के साथ पुल के नीचे से गुज़र गई और मुझे डोंगे का दूसरा सिरा नज़र आया। यहाँ एक लम्बा-सा डाँड लिए एक ग्यारह-बारह वर्ष का लड़का डोंगे को खे रहा था। उसका गोल, सुर्ख और श्वेत चेहरा और सिर पर की कढी हुई टोपी भी पुल के नीचे गायब हो गई और जब मैंने मुड़कर देखा तो वह पुल की दूसरी ओर आ चुके थे। और अब वे डोंगे को निचले घाट पर लगाने के लिए रुख बदल रहे थे। डोंगे की सब खिड़कियाँ खुली थीं और उन खिड़कियों के पीले-पीले पर्दे हवा में लहरा रहे थे। मैंने कनपटियों पर हाथ की छाया करते हुए डोंगे का नाम पढ़ा, जो धूप में चमकते हुए नीलम के टुकड़े की तरह उज्ज्वल नज़र आ रहा था 'दि हैवेन' अर्थात् स्वर्ग। कदाचित यह नाम किसी विलासी पर्यटक अथवा किसी अँग्रेज पादरी ने रखा होगा। 'स्वर्ग' अब निचले घाट के निकट आ रहा था। उसके ड्राइंग रूम की बड़ी खिड़की के ऊपर एक चौकोर बोर्ड

लटक रहा था 'टु लेट'। स्वर्ग किराये के लिए खाली था। मैं जंगले से हटकर एक-दो मिनट उसकी ओर देखता रहा। जेनी और छोटा लड़का अब उसे किनारे पर बाँध रहे थे। सहसा मेरे मन में एक विचार आया और मैं तेज़ी से अमीराकदल के पुल पर से गुजरता हुआ निचले घाट की सीढ़ियों की ओर चला गया।

जेनी ने मुझे देखते ही सिर झुका लिया। फिर वह डाँड का सहारा लिए एक विचित्र प्रकार की झिझक और एक विचित्र प्रकार की बेबाकी के साथ नाव के किनारे पर आ खड़ी हुई और छोटे लड़के से बोली—"अजीज़ा ! साहब को हाउस बोट दिखाओ।"

अजीज़ा हँसता हुआ उठा। वह योंही हँस रहा था। बिना कारण—काश्मीरी लड़कों की तरह। उसके दाँत जो टुथपेस्ट के सेवन के बिना ही असाधारण रूप से चमक रहे थे, उसके लाल ओठों के मध्य में मोतियों की लड़ी की तरह चमक रहे थे। उसने अपने सिर से टोपी उतारकर बेपर्वाही से जेनी के पाँव में फेंक दी और फिर जेनी ने जिन कोमल और स्नेह-मिश्रित नज़रों से उसकी ओर देखा उसे कुछ मैं ही उचित जानता हूँ। उसकी आँखें अजीज़ा की उस सरल चंचलता पर एकदम इस प्रकार चमक उठीं जैसे प्रातः समय डल के मौन नीले जल पर सूरज उदय हो जाय। और जब मैं अजीज़ा के साथ ड्राइंग रूम में प्रविष्ट हुआ तो जेनी का चित्र मेरी आँखों के सामने ही था।

अजीज़ा कहने लगा—"यह ड्राइंग रूम है, यह इस तरफ़ शीशे-वाला मेज़ है, यह लिखने का मेज़।"

मैंने अजीज़ा से पूछा—"क्या यह हाऊस बोट तुम्हारा है ? और यह लड़की कौन है ?"

"वह ?" अजीज़ा ने योंही सिर हिलाते और मुस्कराते हुए कहा—"वह जेनी है, मेरी ख़ाला है। यह हाउस बोट जेनी के खाविंद का है। वह नौकरी की खोज में सूपुर गया हुआ है। यह, इस अलमारी में

चीनी के बर्तन—दो सेट चमचे, पिरचें, ये खाने के बर्तन, दो गैस लैम्प।"

"अच्छा अच्छा, आगे चलो।"

"यह सोने का कमरा है। वह दूसरा कमरा भी सोने का है। इनमें पाँच पलँग आ सकते हैं। मैं और जेनी उस कमरे में रहते हैं—वह छोटा-सा कमरा जो किचन के पास डोंगे की दूसरी तरफ़ है।

"अच्छा, चलो किचन दिखाओ।"

सब-कुछ देख लिया। उस छोटे-से दूसरे दर्जे के डोंगे को जिसे ज़ेनी और अजीज़ा बड़े अभिमान से अपना हाउस-बोट कहते थे। ज़ेनी और अजीज़ा के होनेवाले 'साहब' ने जिसे पंजाब में उसके सब मित्र उसके बेढंगेपन के कारण 'लगड़-बगड़' या 'चर्ख' कहते थे, सब-कुछ देख लिया। परन्तु ज़ेनी को बार-बार देखकर भी उसके दिल की प्यास न बुझी।

"ज़ेनी" मैंने अपनी पतलून से मिट्टी का एक अदृश्य अणु झाड़ते हुए पूछा—"ज़ेनी! इस डोंगे का, मेरा मतलब है इस हाउस-बोट का किराया क्या होगा?"

ज़ेनी ने अपनी महीन आवाज़ में कहा—"क्या साहब यहीं रहेगा?"

"हाँ हाँ, इसी बोट में।"

"तब यह किराये के लिए खाली नहीं।"

"अरे—" मेरे मुँह से आप-ही-आप निकल गया "वह क्यों?"

अज़ीज़ा हँसते हुए बोला—"साहब, हमें वुलर जाना है। असल में हमें सूपुर जाना है मगर रास्ते में वुलर आयेगी—झील वुलर और मानसबल, हम यह डोंगा लेकर सूपुर जायँगे जहाँ जेनी का घरवाला गया है। फिर हम उसे लेकर वापस आयेंगे। अगर साहब को वुलर देखना है तो मंजूर! हम सब-कुछ दिखायेंगे और किराया भी कम होगा। अगर साहब को इधर ही रहना है तो फिर हम मजबूर हैं।"

मैं थोड़ी देर तक खड़ा सोचता रहा। अज़ीज़ा का हँसता हुआ

मासूम-सा चेहरा बहुत आशापूर्ण था, जैसे वह विनयपूर्ण ढंग में कह रहा था "चलो साहब ! वुलर देखने चलो साहब।" मैंने ज़ेनी की ओर देखा। ज़ेनी का चेहरा आँचल की ओट में था। क्या वह भी अपने पति से मिलने के लिए बेचैन थी और तू—एक कवि-स्वभाव आवारा सैलानी ! तू इस खतरनाक तिकोन को क्यों पूरा करना चाहता है ? वासना के दास ! क्या तेरे लिए इस संसार में और कोई काम नहीं ? कोई अभिलाषा, कोई दृष्टिकोण नहीं ?

परन्तु मन के तट पर इस प्रकार की लहरें बहुत ही छोटी-छोटी, कोमल और सुबक होती हैं। आईं और चली गईं। और तट की रेत अपने चमकते हुए लाखों कणों के साथ सदैव किसी प्रेमिका की प्रतीक्षित रहती है।

मैंने धीरे से कहा—"अच्छा अज़ीज़ा ! आज शाम को तुम इस हाउस-बोट को अमीराकदल के सामने—इस घाट पर ले आना। कल हम वुलर चलेंगे।"

"बहुत अच्छा साहब !" अजीज़ा ने प्रसन्नतापूर्ण स्वर में कहा।

ज़ेनी का चेहरा पूर्ववत् आँचल की ओट में था।

हरीसिंह हाईस्ट्रीट की ओर (जहाँ मैं ठहरा हुआ था) जाते हुए मैं मानव-जीवन की मूर्खताओं पर विचार करता रहा। सौन्दर्य क्या है ? और मनुष्य कुरूपता से अधिक सुन्दरता से क्यों प्रभावित होता है ? सुन्दर फूल जब मुर्झा जाता है तो उसे आप पाँव-तले क्यों रौंद डालते हैं ? और क्यों एक स्त्री पाँच बच्चे जनने के बाद आपकी प्रशंसक नज़रों के योग्य नहीं रहती ? ऐसा क्यों होता है कि एक बलिष्ठ किसान दिन-भर ईमानदारी और तन्मयता से काम करता हुआ और दिन-भर भगवान् को याद करता हुआ भी अपने और अपने बाल-बच्चों के लिए अन्न प्राप्त नहीं कर सकता और दूसरी ओर वे भी लोग हैं जो अपने पापों और विलासताओं का एक बोझ लिए तपते हुए मैदानों को छोड़कर इस सुन्दर वादी में स्वर्ग के मज़े लूटने चले आते हैं और

फिर इस बात का क्या प्रमाण है कि जिन लोगों ने इस संसार में निर्धन का स्वर्ग हथिया लिया है वे अगले संसार में भी उसका स्वर्ग नहीं छीन लेंगे ? भाग्य ? आवागमन ? और फिर ये तो जीवन की मूर्खताएँ हैं। इनके सम्बन्ध में कुछ सोचा ही क्यों जाय। क्या यही काफ़ी नहीं कि ज़ेनी सुन्दर है और उसका पति सूपुर गया हुआ है और कल हम इस डोंगे पर सवार होकर वुलर देखने जा रहे हैं ?"

जब मैं अपने निवासस्थान पर पहुँचा तो सभी मुझसे सहमत नज़र आये। गुरुबख्श अपनी दाढ़ी में कलप लगाते हुए बोला—"मैं भी चलूँगा।"

भैयालाल बोला—"मेरे ख़याल में आठ-दस दिन तो गुज़र ही जायँगे और आखिर अब यहाँ श्रीनगर में रखा ही क्या है ? क्यों सरफ़राज़ ?"

मैंने "हाँ" में सिर हिला दिया।

महमूद बोला—"क्यों भई, मैं भी चलूँ ?"

अब रह गये इन्द्र और मित्तल। वे दोनों बंड की ओर सैर को गये हुए थे, जब लौटे तो उन्होंने भी यही उचित समझा कि काश्मीर आकर जीवन की मूर्खताओं पर सोचना सबसे बड़ी मूर्खता है और इसका निवारण केवल एक ही तरह हो सकता है और वह यह कि वे भी वुलर की सैर में अन्य साथियों का साथ दें।

गुरुबख्श ने कहा—"आज रात हम डोंगे ही में रहेंगे। सारा सामान ले चलो। हारमोनियम, तबला, ग्रामोफ़ोन, कैमरा, दूरबीन, बिस्तर, मिठाई, अंडे, केक, फल और हाँ, मैं भूल ही चला था, तुम लोग अपने लिए शेव का सामान भी लेते चलो और हाँ भई सरफ़राज़ ! तुम वहाँ से उस कम्बख़्त डोंगेवाले को ही बुला लाते—उसी से यह सामान उठवा ले जाते।"

"कोई कम्बख़्त आदमी उस डोंगे का मालिक-वालिक नहीं है बल्कि उसकी मालिक तो एक लड़की है।"

"लड़की ?" सबने एक साथ चिल्लाकर कहा।

"पन्द्रह या सोलह साल की...."

परन्तु उन्होंने मुझे वाक्य पूरा न करने दिया, इससे पूर्व ही वे मुझ पर वहशियों की तरह पिल पड़े—"अबेगाउदी" "अबे लगड़बगड़" "अबे चर्खे" "उसका नाम क्या है ?" "सूरत कैसी है ?" "बच्चाजी, बताते हो या अपना गला दबवाओगे ?"

हमें श्रीनगर से चले हुए सात दिन हो चुके थे और अब हम उस 'पानी के जीवन' से बहुत हिल-मिल गये थे। दिन-रात खाना पकाने और खाना खाने के अतिरिक्त और क्या काम हो सकता था ? हाँ, कभी ब्रिज खेलते और कभी कैरम। डोंगा अपनी चाल से जेहलम के स्तर पर बहता चला जा रहा था, महमूद अक्सर दूरबीन लगाकर दूर पहाड़ों की ओर देखता रहता जिनकी चोटियों पर गर्मी के दिनों मे भी बर्फ़ जमी रहती है। गुरुबख्श हारमोनियम के पर्दों पर हाथ रखे अपने कण्ठ से सुरीली तानें निकालता और भैयालाल अपने दुबले-पतले शरीर और लम्बे कद के साथ बार-बार डोंगे की छत को छू कर एक प्रकार से हमें ललकारता और इस प्रकार अपनी शारीरिक निर्बलताओं पर पर्दा डालने का प्रयत्न करता....और जेनी ? जेनी के तो हम सब पुजारी थे। यद्यपि मैं अपना अधिकार सबसे अधिक समझता था और मैंने यह बात सब पर प्रकट भी कर दी थी। परन्तु शीघ्र ही हरएक को मालूम होगया कि यह चिड़िया किसी के जाल में फँसनेवाली नहीं। उसकी अदायें मनोहर थीं। उसके गीत मिठास में डूबे हुए थे और उसकी मुस्कराहट में एक जादू था, परन्तु उसे अपने पति से प्रेम था। उसे अपने उस पति पर अभिमान था जो सूपुर में रोज़गार की तलाश में व्यस्त था। जब वह चप्पू चलाते-चलाते एकाएक हँस पड़ती तो यह हँसी हममें से किसी के लिए न होती थी, अजीज़ा के लिए भी नहीं जो उसे इतना प्रिय था। फिर कभी वह चप्पू हाथ से रख सीधी खड़ी होकर अंगड़ाई लेती और फिर पश्चिम की ओर देखने लग

जाती—जिधर सूपुर था। उस समय गुरुबख्श एक बेसुरे स्वर में चिल्ला उठता—"दिलदार कमंदा वाले दा......दिलदार।"

भैयालाल ने पहले दिन ज़ेनी को देखते ही कह दिया था—"यों शक्ल-सूरत से तो मैं पूरा मजनूं हूँ लेकिन मुझे मालूम है कि यह लैला मुझे प्रेम की नजरों से नहीं देख सकती, और यह लैला ही क्या, संसार की किसी लैला के दिल में भी मेरे लिए चाह उत्पन्न नहीं हो सकती। इसलिए ऐ मेरी पहाड़ी लैला! गुडबाई।" यह हाल केवल भैयालाल ही का नहीं लगभग सबका ही था। शुरू-शुरू में गुरुबख्श ने ज़ेनी को एक-दो दिन सुरीले, प्रेम-भरे गीत सुनाये और किचन में बैठकर मछलियाँ भूनते-भूनते उसे मछलियों की एक प्लेट भी पेश की और कभी-कभी इन्द्र और मित्तल फलों के टोकरों में से सेब और नाशपातियाँ चुराकर उसे दे दिया करते थे और कभी-कभी केक के टुकड़े भी, परन्तु अब कुछ दिनों से यह दयालुता समाप्त कर दी गई थी और अब सब लोग जेनी को लगभग भूल-से गये थे। अब वही दिन-रात खाना पकाना, गाना, नाचना, जेहलम में तैरना और इसी प्रकार के कुछ अन्य काम। हरेक चेहरा प्रसन्न नज़र आता था और इन सात दिनों के थोड़े-से समय ही में हरेक को ऐसा लगने लगा था जैसे उसका वज़न पहले से दुगना हो गया है।

भैयालाल ने अपनी पतली कमर पर हाथ रखते हुए कहा—"अरे यार! मैं तो सचमुच मोटा हो रहा हूँ। अब यह पतलून मुझे कमर से तंग मालूम होती है।"

इन्द्र ने अपने पिचके हुए गालों पर हाथ फेरकर कहा—"मुझे भी ऐसा मालूम होता है कि मेरे गाल अब पहले-जैसे पिचके हुए नहीं रहे।"

मित्तल बोला—"अब मैं शीशे में अपना चेहरा देखता हूँ तो मुझे अपने चेहरे पर सुर्खी की झलक दिखाई देती है।"

महमूद जो समाजवादी विचारों का व्यक्ति था, व्यंगपूर्ण स्वर में बोला—"हाँ इन्कलाब करीब आ रहा है।"

इन्क़लाब तो खैर एक दूर की बात थी; परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं था कि सूपुर निकट आ रहा था। कल वुलर और परसों सूपुर और फिर शायद ज़ेनी की ये चंचल अदायें हमें आयु-भर देखने को न मिल सकेंगी। मैं किचन के दरवाज़े पर खड़ा होकर ज़ेनी की ओर देखने लगा जो डोंगे के किनारे पर बैठी चप्पू से डोंगे का रुख ठीक कर रही थी। डोंगे के दूसरे सिरे पर अज़ीज़ा पसीने में भीगा हुआ डाँड़ चला रहा होगा—मैंने दिल में सोचा, बेचारा निर्धन—ग्यारह वर्ष का अबोध बालक—परन्तु पेट के लिए सब-कुछ करना पड़ता है। किचन के पीछे जो कमरा था वहाँ महमूद सोया पड़ा था और उसके खर्राटे भरने का मध्यम स्वर मेरे कानों में पहुँच रहा था। कभी-कभी ड्राइङ्ग रूम में हँसी की एक ऊँची चीख-सी सुनाई देती—इन्द्र ने बृज खेलते समय ब्लफ़ से काम लिया होगा।

ज़ेनी ने कहा—"साहब! कल हम वुलर पहुँच जायँगे।"

"झील वुलर क्या बहुत खूबसूरत है?"

जेनी सिर हिलाते हुए बोली—"जी साहब! जिधर नजर उठाओ पानी-ही-पानी। तेरह-चौदह मील तक चारों तरफ़ नीला पानी और बीच में कहीं-कहीं कमल के लाखों फूल खिले हुए और एक तरफ़ श्री बटनाग।"

"श्री बटनाग क्या?"

"बटनाग वुलर का देवता—वुलर का बादशाह है। वहाँ हरेक आदमी को चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान या अंग्रेज कुछ-न-कुछ भेंट देनी पड़ती है।"

"और अगर वह न दे तो?"

"तो इसकी नाव डूब जाती है।"

"अच्छा तो क्या वुलर झील बहुत खूबसूरत है?"

"साहब खुद देख लेंगे।"

"तुमसे भी ज्यादा खूबसूरत?" मैंने ज़ेनी के और समीप पहुँचकर कहा।

जेनी का चेहरा जो पहले सेब के फूल की तरह था अब गुलाब का फूल बन गया। उसने शरमाकर अपना मुँह मोड़ लिया।

मैंने अपनी जेब से पाँच रुपये का एक नोट निकाला और जेनी के हाथ में देते हुए भावुक स्वर में कहा—"यह लो इसे श्री बटनाग की भेंट कर देना।"

कुछ क्षणों तक चुप्पी रही। फिर एकाएक ज़ेनी चप्पू छोड़कर तनकर खड़ी हो गई। उसने मेरी ओर तीखी नजरों से देखा। गुलाब का फूल एक शोला बन गया था। उसने अपने हाथ में काँपते हुए नोट को ज़ोर से अपनी मुट्ठी में मसल डाला और फिर उसे तेज़ी से पानी में फेंक दिया। ज़ेनी के ओठ काँप रहे थे। उसकी आँखें सजल हो गई थीं और बालों की एक लट दाहिने गाल पर उतर आई थी।

यह ज़ेनी का दूसरा चित्र है जो आज तक मेरे मस्तिष्क में सुरक्षित है। मैं आज भी आँखें बन्द किये कल्पना-संसार में उसे एक शोला—ज्वाला की तरह भड़क उठते देख सकता हूँ।

मैं देर तक किचन के दरवाजे के समीप लज्जित-सा खड़ा रहा। अपनी पराजय का जीवित चित्र। नोट चक्कर काटता हुआ पानी के स्तर पर बह रहा था। आख़िर उसे एक मछली ने निगल लिया। धीरे-धीरे आकाश के पश्चिमी छोर में सूर्यास्त की लालिमयुक्त लहरें गायब हो गईं और रात की काली चादर पर तारों के मोती टाँक दिये गये। इन तारों की चंचल हँसी जैसे मुझसे बार-बार कह रही थी—क्यों क्या तुम ज़ेनी को भी एक मछली समझते हो? वह मछली जो तुम्हारे पाँच रुपये के नोट को एक बहुत बड़ी सौगात समझकर चुप-चाप निगल जाती। लेकिन वह पानी की मछली नहीं, मानव की संतान है। उसे अपने भले-बुरे की पहचान है। वह निर्धन है तो क्या हुआ।

वह तुम्हारे रुपयों की भूखी नहीं। तुम उसे ख़रीद नहीं सकते—कभी नहीं ख़रीद सकते।

दूसरे दिन हम वुलर के किनारे पहुँच गये और हमने अपने डोंगे को वहाँ बँधवा लिया जहाँ जेहलम झील वुलर में दाख़िल होती है।

जहाँ तक नज़र काम करती थी समुद्र की तरह नीला पानी फैला हुआ था और दूर, बहुत दूर चारों ओर एक अस्ताचल, एक नीली दीवार की तरह नज़र आ रहा था। मुरगाबियों के झुंड झील के ऊपर उड़ान भर रहे थे। चार-पाँच नावें झील के स्तर पर बच्चों की नाव की तरह कमज़ोर और बेबस-सी नज़र आ रही थीं। वायु बन्द थी अन्यथा यदि वायु ज़ोर से चल रही होती तो इस झील में बीस-बीस फुट की लहरें उत्पन्न होना कठिन न था और फिर पानी की इन तूफ़ानी दीवारों के आगे नाव कहाँ ठहर सकती थी?

परन्तु हम दिन भर एक नाव में बैठ कर झील में घूमते रहे और वायु बिल्कुल बन्द रही और झील का स्तर नीले रंग के शीशे की तरह बिल्कुल निर्मल और निश्चेष्ट था। हमने श्री बटनाग देखा। यह एक बहुत बड़ा भँवर था जो झील के पश्चिम में एक गोल चक्कर बनाता हुआ घूम रहा था और बहुत भयानक मालूम होता था। परन्तु हमने नाव के खेवों के कहने पर भी वुलर के इस बेताज बादशाह को एक पैसा तक भेंट करना पसंद न किया और फिर हमने श्री बटनाग का एक वजीर भी देखा जो एक छोटा-सा भँवर था और पहले भँवर से लगभग चार मील की दूरी पर था। हाँ, यहाँ गुरुबख्श ने, जो तैरना कम जानता था, एक-दो नाशपातियाँ अवश्य वज़ीर की भेंट कीं जो भगवान जाने कितने दिनों से भूखा था। क्योंकि खेवों के कहने पर मालूम हुआ कि अंतिम घटना आज से दो मास पूर्व तीन अँग्रेज़ों के साथ घटी थी जो इस झील में नाव चलाते-चलाते उन तूफ़ानी लहरों का ग्रास बन गये थे जो एकाएक एक तेज़ झक्कड़ के चलने से उत्पन्न हो गई थीं।

सेहपहर के बाद जब हम झील की सैर से लौटे तो ज़ेनी और अज़ीज़ा दोनों को बेतरह रोते पाया। पूछने पर पता चला कि ज़ेनी का पति सूपुर से पंजाब चला गया है—रोज़गार की तलाश में। एक आदमी सूपुर से आया था। वह इधर से गुज़र रहा था और उससे पूछने पर यह सब हाल मालूम हुआ था। हमने जेनी और अज़ीज़ा को जहाँ तक हो पाया तसल्ली देने की कोशिश की परन्तु उनके आँसू थमते ही न थे। वे अपने-आप को बिलकुल निराश्रय पा रहे थे और बालकों की तरह फूट-फूट कर रोये चले जा रहे थे।

तबीयत बहुत उदास रही। ये लोग कितने मूर्ख हैं। रोने से क्या होता है? और फिर क्या उस मूर्ख काश्मीरी को अपने देश में कोई काम नहीं मिल सकता था? पंजाब में क्या उसे कुबेर का धन मिल जायगा? गधे! मूर्ख! निर्धन! इनमें बुद्धि तो नाम को नहीं होती। बस, बोझ उठाना जानते हैं—खच्चरों की तरह। इन्हें मनुष्य समझना ही मूर्खता है। इनके साथ खच्चरों का-सा ही व्यवहार होना चाहिये। निर्धन लोग निर्धन ही रहें तो ठीक तरह से काम करते हैं। यदि इन्हें भरपेट खाना मिलने लगे तो अकड़ जाते हैं—जो हो, तबीयत बहुत उदास रही। हम सब लोग अपने-आप को दोषी समझ रहे थे और यह अनुभव सदैव कष्टदायक होता है। आखिर खाना खाने के बाद भैया लाल के चुटकलों से कुछ तबीयत बहली। गुरुबख्श ने ग्रामोफ़ोन पर कुछ अच्छे रिकार्ड सुनाये और हमारी महफ़िल फिर कहकहों से गूँज उठी।

दस बजे के लगभग जब बृज शुरू की गई तो मैं सिर दर्द का बहाना करके उठ आया। वास्तव में मैं बृज खेलना नहीं चाहता था। पहले मैं सोने के कमरे में गया। फिर मैंने किचन में जाकर पानी का एक गिलास पिया; परन्तु तबीयत में पूर्ववत बेकली थी। मैं किचन से होता हुआ बाहर डोंगे के खुले फर्श पर आगया।

जेनी हाथ में चप्पू लिए हुए झील के पानी की ओर देख रही

थी। वह डोंगे के किनारे पर बैठी थी और उसके कदमों में अज़ीज़ा लेटा हुआ था। नहीं, वह रो-रो कर सो गया था। उसकी पलकों पर अभी तक आँसू चमक रहे थे उसके ओठों से अब भी कभी-कभी कोई छाती में दबी हुई सिसकी निकल जाती थी। और ज़ेनी ?—वह क्या सोच रही थी ?

क्या उसकी नज़र झील की चौड़ाइयों से परे पंजाब के इन मैदानों तक पहुँच रही थी जहाँ उस ज़ालिम परदेस में शायद किसी लकड़ी और कोयले की दुकान के आगे उसका पति लेटा हुआ था। दिन-भर सिरतोड़ परिश्रम के बाद......एक थके हुए खच्चर की तरह हाँप रहा था।

जेनी का चेहरा उदास था, जैसे उसकी आँखें शून्य में कुछ देख रही हों।

"ज़ेनी !" मैंने धीरे से कहा।

वह मौन बैठी रही।

"मुझे दुख है जेनी।"

ज़ेनी की छाती ज़ोर-ज़ोर से हरकत करने लगी।

"जेनी तुम घबराओ नहीं।" मैंने धीरे-से कहा।

"साहब ! अब हम क्या करेंगे ?" जेनी ने भर्राये हुए कंठ से कहा—"अब हमारा इस दुनियाँ में कोई नहीं। एक खाविंद था वह परदेस चला गया.........अजीज़ा छोटा है..........मैं औरत ज़ात ....हाय अब क्या होगा ?"

जेनी की सिसकियाँ तेज़ होती गईं। मैं उसके समीप जा खड़ा हुआ और उसका हाथ अपने हाथों में लेकर बोला—"क्यों घबराती हो जेनी—तुम्हारा खाविंद ज़रूर परदेस से वापिस आ जायगा और...."

जेनी ने रोते हुए कहा—"साहब मैं मर जाऊँगी और छोटा अज़ीज़ा भी भूखा मर जायगा—हाय उसने हमें धोखा दिया।"

तुम्हारी हर तरह से मदद करने को तैयार हूँ........हाँ। तुम रोती क्यों हो....मेरी अच्छी जेनी...मुझे तुमसे बेहद मुहब्बत है...बेहद मुहब्बत.... मैं तुम्हारे लिए सब-कुछ करने को तैयार हूँ।"

यह कहते हुए मैंने उसके हाथ में पाँच रुपये का एक नोट थमा दिया। जैसे दीपक बुझने से पूर्व शोले की एक लपक उत्पन्न होती है उसी प्रकार जेनी की आँखों में वही पुरानी चमक उत्पन्न हुई परन्तु फिर तुरंत ही बुझ गई। तेल समाप्त हो चुका था और फिर निर्धनों के पास तेल होता ही कितना है।......जेनी एक टूटी हुई बेल की तरह मेरी गोद में गिर पड़ी और उसने अपने आँसुओं से तर चेहरे को मेरी बाहों में छिपा लिया.......और ज़ोर-ज़ोर से सिसकियाँ भरने लगी।

चाँद का चेहरा फीका पड़ गया था। सितारे लज्जित थे। वे जेहलम के स्तर पर बासी फूलों की तरह दिखाई दे रहे थे। वायु कँवल के पत्तों के निकट से गुज़रती हुई आहें भर रही थी। विश्व का अणु-अणु सिर झुकाकर उदास स्वर में कह रहा था।

"तुमने हमें ख़रीद लिया।"

केवल ड्राइंग रूम से गुरबख्श के गाने की आवाज़ सुनाई दे रही थी....वह झूम-झूमकर गा रहा थाः—

अगर फ़िर्दौस बर रूए ज़मीं अस्त
हमीं अस्तो हमीं अस्तो हमीं अस्त

सफ़ेद फूल

मौजा महिंदर के मोची का नाम कबाला था। कबाला को आज तक किसी ने गाली बकते या झूठ बोलते न सुना था। स्वाभाविक सज्जनता के अतिरिक्त शायद इसका यह कारण भी था कि वह जन्म ही से गूँगा था। यों तो महिंदर का गाँव बौद्धों का गाँव था जहाँ हरेक व्यक्ति सत्य और अहिंसा का पुजारी था। लोग बहुत कम झूठ बोलते थे। चोरी-चाकरी और डकैती का तो नाम तक न था। पिछले दो सौ वर्ष से वहाँ क़त्ल की एक भी घटना न घटी थी। लोग महिंदर में इस प्रकार सुख-चैन से रहते थे, मानो स्वर्ग में रह रहे हों। यह बात अलग है कि समाज की उलझनों में फँसकर गाँव के लोग कभी-कभी ऐसे काम भी कर बैठते थे जिन पर उन्हें बाद में पछताना पड़ता था, परन्तु ऐसी बातें बहुत कम होती थीं और फिर यह तो समाज ही का दोष था, उनका तो न था।

कबाला की दुकान पहाड़ की चोटी के निकट देवदार के दो बड़े-बड़े वृक्षों की छाया-तले, लकड़ी के तख़्तों को जोड़कर तय्यार की गई थी और यह कबाला की दुकान भी थी और उसका घर भी।

महिंदर का सुन्दर गाँव नीचे तलहटी में स्थित था और जब हवा देवदार के वृक्षों में से गुजरती हुई गीत गाती और सूरज देवता अपने सुनहले रथ पर सवार होकर ऊँचे देवदार की चोटियों के ऊपर से गुजरते तो

नीचे तलहटी में गाँव की सुन्दर छतें और पुराने बौद्धमन्दिर का मंगोली बुर्ज संध्या की सुनहली किरणों में जग-मग जग-मग करने लगता। सूरज निकलते ही कबाला दुकान के बाहर एक छोटे-से अखरोट के वृक्ष के नीचे आ बैठता और जूतियाँ बनाते-बनाते अपनी बड़ी-बड़ी हैरान आँखों से दूर रास्ते पर से गुज़रती हुई युवतियों की ओर देखता जो मिट्टी की गागरें कूल्हों पर रखे या सिर पर उठाये पंक्ति बाँधे गीत गाती हुई धीरे-धीरे चलती जाती थीं और जब वे पगडंडी पर से गुजर जातीं तब भी वह उसी ओर देखता रहता। उस समय उसे कुछ ऐसा लगता जैसे उन युवतियों के पाँव के स्पर्श से मार्ग की मिट्टी का प्रत्येक कण कुन्दन बनकर दमक रहा है। उसकी आँखों में आँसू आते और उसके हृदय के अन्धकार में एक सोने की रेखा-सी खिंच जाती और उसका जी चाहता कि वह जोर-जोर से गाये। यहाँ तक कि दूर नीचे राह चलती हुई युवतियों के पाँव रुक जायँ और वह अलबेली नैना, गाँव के मुखिया की लड़की भी एक हाथ गागर पर रखे और दूसरे हाथ से धोती का पीला आँचल सँभाले उसकी ओर तकने लग जाये........और........चोटी के ऊपर छोटे-से नीले आकाश में उड़ते हुए बादल एकाएक थम जायँ और उसका दर्द-भरा गीत सुनने के लिए ऊँचे-ऊँचे देवदारों के ऊपर झुक जायँ—परन्तु जब कबाला अपने ओंठ खोलता तो उसके मुँह से एक दबी-सी चीख निकल कर रह जाती। ऊँची और कर्कश, जिसे सुनकर आसपास के वृक्षों पर बैठे हुए नाज़ुक मिज़ाज कुक्कू सन्हौले और रत्तगलें पंख फड़फड़ाते हुए उड़ जाते और कबाला लज्जित होकर अपने ओंठ जोर से मींच लेता, जैसे उन्हें सूत के टाकों से उसने स्वयं ही सी दिया हो।

कबाला की शक्ल-सूरत बहुत अच्छी थी। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें किसी वहशी मृग की-सी थीं और चेहरा गोल। और जब वह अखरोट के वृक्ष तले घुटने टेके जूते बना रहा होता हो उसका स्वच्छ और मासूम चेहरा बिल्कुल किसी देवता के चेहरे जैसा प्रतीत होता। सूरतें कितना

धोखा देती हैं। कबाला को देखकर किसी को यह भ्रम तक न हो सकता था कि आज से दो सौ वर्ष पूर्व इसी मोची के एक बुजुर्ग ने इस गाँव के एक गरीब बौद्ध साधु को उसका गला घोंटकर मार डाला था, क्योंकि उसे सन्देह था कि बौद्ध साधु उस लड़की को वरगला रहा था जिससे कबाला के उस बुजुर्ग को प्रेम था। गाँव में कत्ल की घटना शायद इससे पूर्व कभी नहीं हुई थी और गाँव के पंचों ने बड़े सोच-विचार के बाद यह फैसला किया था कि किसीकी जान के बदले दूसरे की जान लेना अधर्म है। इसलिए उन्होंने कबाला के बुजुर्ग को गाँव से बाहर निकाल दिया था और घोषणा कर दी थी कि जब तक इस खानदान की सात पीढ़ियाँ इस पाप का प्रायश्चित्त न कर लें इस खानदान के किसी व्यक्ति को गाँव की सीमा के भीतर पाँव रखने की आज्ञा न होगी। उस दिन से लेकर गाँव के मोची की दुकान पहाड़ की चोटी के निकट स्थित थी—गरमी हो या सरदी, धूप हो या बरफ। चार पीढ़ियों से महिंदर के मोची ने गाँव में पाँव न रखा था। वह बहुत-सी चीज़ें खनेतर के गाँव से ले आता था जो महिंदर के अस्पताल की दूसरी ओर एक छोटी-सी घाटी में स्थित था और अब ता खनेतर के मोची के खानदान से महिंडर के मोची का सम्बन्ध इतना गहरा हो चुका था कि महिंडर के मोची का खानदान बौद्ध पंचों के दण्ड को लगभग भूल गया था।

हाँ! नौजवान कबाला के मन में कभी-कभी एक हल्की-सी टीस उठती, क्योंकि वह नौजवान था और अकेला और गूँगा। उसके माँ-बाप मर चुके थे और खनेतर के मोची खानदान के व्यक्ति उसके गूँगा होने से उससे घृणा करते थे। अरवाई और ज़ीशी दोनों बहनें उसका मज़ाक उड़ाया करती थीं और उसके हाथ-पाँव की दिलचस्प हरकतों की जिनसे वह अपनी जिह्वा का काम लेता था, नकलें उतारा करती थीं और जब उनके हँसी-ठट्ठे में उनके तीनों बड़े भाई भी शामिल हो जाते तो

गूँगे के दिल का घाव रिस-रिस कर बहने लगता और वह चीख़ें मार कर वहाँ से भाग जाता।

कबाला का एक मित्र भी था उसका नाम था खंडा। कबाला ने खंडा को एक दिन खनेतर से वापस आते हुए रास्ते में पड़ा पाया था। वह भूख से बेताब होकर चिल्ला रहा था। उसकी डायन माँ उसे रास्ते ही में छोड़कर किसी के साथ भाग गई थी। कबाला खंडा को उठा कर अपने घर ले आया था। उसने उसे पाल-पोस कर इतना बड़ा किया था और खंडा भी कबाला को बहुत चाहता था। कई बार जब खंडा कबाला को उदास देखता तो अपनी दुम हिला-हिला कर इस प्रकार चिल्लाता जैसे कह रहा हो—मेरी ओर देखो, मैं भी तुम्हारी तरह बातचीत नहीं कर सकता लेकिन क्या मैं प्रसन्न नहीं हूँ। वह देखो, उस अख़रोट की टहनी पर कैसी सुन्दर चिड़िया बैठी है। ऐ लो, वह उड़ गई और फिर खंडा कबाला के पाँव के गिर्द नाचने लगता, यहाँ तक कि कबाला का दुःख दूर हो जाता। उसके चेहरे पर प्रसन्नता फूट पड़ती और वह अपने प्यारे कुत्ते की पीठ को ज़ोर-ज़ोर से थपक कर उसे अपने पास बिठा लेता। उस समय उसकी नज़रें स्पष्ट रूप से कह रही होतीं "खंडा भइया, तुम बहुत चंचल और प्यारे हो। चंचलता तो अरवाई और ज़ी शी में भी है परन्तु वे प्यारी नहीं हैं और नैना में शरारत नहीं लेकिन वह बहुत अच्छी है। क्या तुम नैना को नहीं जानते ? वह हमारे गाँव के मुखिया की लड़की है और उस दिन अपने बाप के साथ यहाँ आई थी, नहीं जानते ? ज़लील कुत्ते ! चलो हटो यहाँ से।"

और खंडा गुर्रा कर कहता—"मुझे मुखिया की क्या पर्वाह है और मैं किसी नैना-वैना को नहीं जानता और तुम मुझे अपने पास से नहीं हटा सकते। मैं जंगल के भेड़िये की तरह हूँ। मुझे कोई मामूली—ऐसा-वैसा कुत्ता न समझना ! समझे ?"

जब कबाला ने नैना को पहले-पहल देखा तो उस दिन धुंध छाई हुई थी। एक हलकी कोमल धुंध जो देवदार के वृक्षों को अपने श्वेत

लबादे में लपेटे जंगल की हरी झाड़ियों से लेकर चोटी के ऊपर आकाश में फैले हुए बादलों तक चली गई थी। सारे वातावरण में प्रातः की चुप्पी थी, न हवा चल रही थी न पक्षियों की बोलियाँ सुनाई देती थीं, क्योंकि जब धुंध हो जाय तो पक्षी भी मौन हो जाते हैं। इस गूँगे संसार में जब कबाला पहाड़ी झरने से नहाकर लौट रहा था तो रास्ते में उसने चट्टान पर खड़ी धुंध की देवी को देखा। हाँ, यह धुंध की देवी ही तो थी। सिर से पाँव तक एक श्वेत धोती में लिपटी हुई। उसका चेहरा कबाला को ऐसा मालूम हुआ जैसे ओस के कतरों से धुला हुआ गुलाब का फूल धुंध की हलकी और श्वेत लहरों में तैर रहा हो। वह ठिठककर खड़ा हो गया और मुँह खोले हुए उसकी ओर देखने लगा। धुंध की देवी ने कहा—"मैं रास्ता भूल गई हूँ, मैं नैना हूँ, मुझे गाँव का रास्ता दिखा दो।"

कबाला कुछ क्षणों के लिए बुत बना खड़ा रहा, फिर धीरे-से पीछे मुड़ा। उसने हाथ के संकेत-द्वारा नैना को अपने साथ चलने को कहा। धुंध गहरी हो रही थी; परन्तु अब वे साथ-साथ चल रहे थे और कबाला सोच रहा था—तुम नैना हो, तुम धुंध की देवी हो, तुम रास्ता भूल कर आगई हो—रास्ता! कबाला नैना के पाँव की ओर देखने लगा। कोमल छोटे-छोटे गुलाबी पाँव! अच्छा तो उसने चप्पल क्यों नहीं पहन रखी? वह एक ऐसी अच्छी चप्पल तैयार करेगा कि धुंध की देवी भी उसे पहन कर प्रसन्न हो उठे। पतला-सा चमड़ा और उस पर बारीक चाँदनी के तारों के फूल। सुन्दर और कोमल-जैसे नैना के पाँव। उसका जी चाहा कि वह देवी के कदमों में अपना सिर रख दे और कहे कि अपने पुजारी को इनकी पूजा कर लेने दो और फिर एकाएक उसे ख़याल आया कि वह तो कुछ भी नहीं कर सकता और वह उस महान् भेद को अपने दिल की गहराइयों में छिपाने को तैयार हो गया। अब चलते-चलते उसे प्रति क्षण भय होने लगा कि कहीं नैना उससे कोई बात न पूछ ले। एक बात, एक शब्द—और फिर वह

जान लेगी कि वह गूंगा है और प्रकृति ने उसे सदैव के लिए मौन कर दिया है। मौन और निश्चेष्ट शायद पैदा होने पर वह एक बार चिल्लाया होगा; लेकिन अब तो वाक्-शक्ति बिल्कुल ही समाप्त हो चुकी थी और उसका जीवन-संगीत बिल्कुल निर्जीव और मृत्यु की तरह शान्त था। गाँव की सीमा के निकट पहुँच कर कबाला खड़ा हो गया और फिर उसने हाथ से धुंध में लिपटे हुए मार्ग की ओर संकेत किया।

नैना ने क्षण-भर के लिए रुक कर पूछा—"तुम कौन हो, कहाँ से आये हो? मैंने पहले तुम्हें कभी नहीं देखा, तुम कहाँ रहते हो?"

कबाला ने पहाड़ की चोटी की ओर संकेत किया और फिर आँखें नीची करके खड़ा हो गया।

कुछ क्षणों के बाद नैना बोली—"ओह तुम हो कबाला!"

कबाला देर तक गर्दन झुकाने, बाहें लटकाये खड़ा रहा और जब वह चलने लगी तो उसने अपनी बड़ी-बड़ी वहशी मृग की-सी आँखों से नैना की ओर देखा। वह क्या कहना चाहता था? वह क्या कह सकता था? काश! वह कुछ कह सकता!

नैना धीरे-से मुड़ गई। श्वेत धुँध में उसकी मिटती हुई तस्वीर को देखकर कबाला की आँखों में आँसू उमड़ आये।

जिस दिन नैना रास्ता भूलकर कबाला के हृदय में उतर आई थी उस दिन से कबाला को ऐसा लग रहा था जैसे धरती के सोये हुए सब स्वप्न जाग उठे हैं। महिंदर की घाटियों में एक नई सुन्दरता और आकर्षण आ गया है। और उसकी आत्मा में प्रसन्नता और दुःख की सीमायें फैलते-फैलते एक दूसरे से मिल गई हैं। शायद यदि वह गूँगा न होता तो उसके भाव इतने उग्र न होते। यदि उसकी जिह्वा नैना को उसकी मनोकामना बता सकती तो शायद उसकी शिथिलता की स्थिति ही कुछ और होती। परन्तु अब जब कि उसके अथाह भावों ने चारों ओर प्रकृति-द्वारा लगे हुए लोह-बन्द देखे तो उसकी आत्मा

की तड़प और संगीत उसकी बनाई हुई चप्पलों और जूतों में उतर गये। उन दिनों उसने चप्पलों और जूतों के ऐसे सुन्दर नमूनों का आविष्कार किया कि उसकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गई और लोग दूर-दूर से आकर उससे जूते और चप्पल बनवाने लगे। खनेतर के मोची ने उससे संकेत ही संकेत में कई बार कहा कि अब जब कि तुम्हारी दुकान चमक उठी है तुम्हें शादी कर लेनी चाहिए। और अब वह बिना कुछ लिये कबाला को डरवाई अथवा ज़ीशी का नाता देने को तैयार था। डरवाई और ज़ीशी भी तो अब उसे अधिक तंग न करती थीं। अब उनकी नज़रों में चंचलता के साथ आदर या शायद कुछ और भाव भी आ मिले थे। शायद अब वे दोनों अपने-अपने मन में कबाला को अपना होनेवाला पति समझ रही थीं। अब उन्हें कबाला की बड़ी-बड़ी आँखों में, देवताओं के से चेहरे में, सुन्दर रंगत में और लम्बे गठीले शरीर में साहस, वीरता और सुन्दरता के समस्त गुण दिखाई देते थे। जिस प्रकार तालाब में कागज़ की एक हल्की सी नाव डाल देने से भी लहरें उत्पन्न हो जाती हैं और फिर बढ़ती हुई, दायरे बनाती हुई चारों ओर फैल जाती हैं इसी प्रकार कबाला के प्रेम की नाव ने भी मंहिंदर के शान्त वातावरण में हलचल उत्पन्न करदी थी और अब ये लहरें चारों ओर फैल गई थीं। खंडा को इस बात का पता चल गया था। नैना की सखियों को और शायद गाँव के अन्य व्यक्तियों को भी। जब गाँव की युवतियाँ नैना को छेड़तीं तो नैना को कबाला पर बहुत क्रोध आता। मूर्ख, गूँगा, पागल, चमार....न जाने वह उसे क्या कुछ कह डालती थी और बेचारे कबाला को क्या मालूम था कि नैना का बाप तो एक समय से नैना के विवाह का मामला तय कर चुका था। उसने नैना को ताशीपुर के बौद्ध सरदार से ब्याह देने का वायदा कर लिया था। बड़ी मुश्किल से तीन हज़ार रुपये पर फ़ैसला हुआ था। ताशीपुर का सरदार बहुत कंजूस था और दो हज़ार से अधिक देने का नाम न लेता था। तब नैना के बाप ने साफ़-साफ़ कह दिया था कि ताशी-

सरदार से होने जा रहा है। विवाह अवंतीपुर में होगा जो महिंदर और ताशीपुर के मध्य में ऊँचे पहाड़ों के बीच स्थित था। विवाह अवंतीपुर का पूज्य बौद्ध पुजारी करायेगा। नैना बड़ी भाग्यशाली थी कि एक इतने बड़े सरदार से ब्याही जानेवाली थी जो किसी प्रकार भी एक राजा से कम न था और सुना है, लोहार ने कहा, कि नैना के बाप ने ताशीपुर के सरदार से तीन हज़ार रुपया लिया है। अब ये दण्ड देनेवाले पंच कहाँ सो गये हैं। गाँव का लोहार बहुत देर तक इसी प्रकार कबाला से बातें करता रहा और कबाला सिर झुकाये एक चप्पल में सूत के टाँके लगाता रहा। और जब लोहार वहाँ से चला गया तो मुखिया का भेजा हुआ एक आदमी आ गया और उसने कबाला से कहा कि मुखिया कहता है नैना के लिए विवाह की चप्पल कल सुबह तक तय्यार कर दो क्योंकि उन्हें कल सुबह ही अवंतीपुर जाना है। परसों नैना का विवाह है।

नैना का विवाह? कबाला के मन में विचार आया कि पहले तो विवाह की चप्पल बनाने से इन्कार कर दे, फिर मुखिया के भेजे हुए उस आदमी का गला घोट दे। फिर मुखिया की जान ले ले और फिर इसी पहाड़ की चोटी से गिर कर नीचे की चट्टान पर अपना सिर पटक दे। परन्तु उसने बड़ी कठिनता से अपने क्रोध और निराशा पर काबू पा लिया और मुखिया के आदमी को संकेत में कहा कि वह मुखिया की आज्ञा का अवश्य ही पालन करेगा परन्तु इस समय उसके पास चाँदी के तार नहीं हैं। वह उन्हें खनेतर से लायेगा और कल सुबह तक चप्पल तैयार कर देगा।

परन्तु दूसरे दिन जब मुखिया का आदमी चप्पल लेने आया तो कबाला ने हाथ बाँध कर उससे कहा कि विवाह की चप्पल तैयार नहीं हो सकी। वह खनेतर गया था; परन्तु उसे तार कहीं से भी न मिल सके और वह विवश होकर लौट आया। उसे बहुत दुःख था कि चप्पल

तैयार न होने से विवाह में विघ्न पड़ता था; परन्तु वह क्या कर सकता था? वह बिल्कुल विवश था।

जब मुखिया के आदमी ने ये बातें जाकर अपने मालिक से कहीं तो वह बहुत आग-बगूला हुआ। उसने गूँगे को बेतरह सुनाई। कमीना, बदमाश, गूँगा—वह अपने आपको बहुत चालाक समझता है क्या? शैतान, पाजी—क्या वह यह समझता है कि अगर चप्पल न होगी तो नैना का ब्याह रुक जायगा? वह नैना की शादी से लौट कर उस कम्बख्त को ज़रूर मज़ा चखायेगा। वह ऐसा प्रबंध करेगा कि महिंदर के लोग तो क्या आस-पास के किसी गाँव का कोई आदमी भी उसके नापाक हाथों का बना हुआ जूता न पहने; परन्तु ज़रा वह अपनी लड़की की शादी से निबट ले।

कुछ देर के बाद उसी अखरोट के वृक्ष के तले खड़े होकर कबाला ने देखा कि गाँव के लोग अवंतीपुर के जानेवाले मार्ग पर एकत्रित हो रहे हैं। गाँव के मुखिया को इस शुभ यात्रा पर रवाना करने के लिए। फिर कुछ देर के बाद ढोल, करन, नफीरी और पवित्र मंत्रों की आवाज़ों में मुखिया नैना और अपने सम्बन्धियों को लेकर अवंतीपुर की ओर रवाना हो गया। कबाला बहुत देर तक खड़ा देखता रहा, यहाँ तक कि माल-असबाब से लदे हुए खच्चरों और काफ़ले के लोग तंग मार्ग से गुज़रते हुए अगले मोड़ पर गायब हो गये। उसके हृदय से एक आह निकली। अच्छा! तो यह उसके प्रेम का अंत था; परन्तु उसे इससे उचित अंत की आशा ही क्यों हुई? वह चुपचाप, सिर झुकाये लकड़ी के घर के भीतर चला गया। खंडा उसके कदमों के साथ लगा हुआ था। कबाला ने क्रोध में आकर उसे एक-दो ठोकरें लगाईं परन्तु गरीब खंडा चिल्लाया नहीं, बल्कि अपने मालिक की ओर उदास नजरों से देखता हुआ उसके पीछे-पीछे आ गया। कबाला ने खाट पर बैठकर अपने चेहरे को दोनों हाथों में थाम लिया और खंडा ने अपनी थोथनी उसके दोनों पैरों के बीच रख दी। फिर काफी देर के बाद कबाला ने

धीरे से हाथ बढ़ाकर खंडा को उठा लिया और उसे गले से लगाकर फूट-फूटकर रोने लगा। गरीब गूँगे का विचित्र रुदन; परन्तु वहाँ उसे देखनेवाला कोई न था। हाँ, अब उसकी आत्मा उसे बार-बार फटकार रही थी कि उसने नैना के लिए विवाह की चप्पल क्यों तैयार नहीं की। चमड़ा उसके पास था और चाँदी के तार भी। यह कैसी कमीना हरकत थी। आखिर इसमें नैना का क्या दोष था? और अब क्या नैना विवाह की चप्पल पहने बिना ही ब्याही जायगी—नंगे पाँव, कितनी लज्जा की बात थी। परन्तु वह तो अब भी उसके लिए एक ऐसी सुन्दर चप्पल तैयार कर सकता था जिस पर कमल के फूलों का धोखा हो। फिर उसने सोचा कि वह क्यों न अभी विवाह की चप्पल तैयार करने के लिए बैठ जाय। वह रातों-रात सफर करता हुआ अगली सुबह अवन्तीपुर पहुँच सकता है और शादी से पूर्व स्वयं नैना के पाँव में चप्पल पहना सकता है। यह विचार आते ही उसने चप्पल बनाने का निश्चय कर लिया और चमड़ा साफ करने बैठ गया।

जब कबाला ने चप्पल बना ली तो उस समय पश्चिम में सूर्यास्त की लालिमा भी बाकी न रही थी। चारों ओर पहाड़ों पर बादल उमड़ आये थे और अपने श्वास रोके पहाड़ी के गिर्द घेरा डाले हुए थे। तब धीरे से एक अंगड़ाई लेकर रात की रानी जाग उठी और उसने बादलों को अपने गिर्द पाकर प्रसन्नता और मस्ती से नाचना आरम्भ कर दिया। उसके पायज़ेब की झंकार बौद्ध मंदिर के मँगोली बुर्ज और गाँव की सुन्दर छतों में काँपती हुई मालूम होती थी। और उसकी कलाइयों में पड़े हुए चाँदी के कंगन रह-रहकर कौंद जाते थे। उन्हीं की चमक में गाँव के लोहार और कुम्हार ने देखा कि आवन्तीपुर के पेचदार और कठिन मार्ग पर कबाला सिर झुकाये और बगल में कुछ दबाये, खंडा को साथ लिए चला जा रहा है।

और लोग यह भी कहते हैं कि उस रात महिंदर की वादी में एक बहुत भयानक तूफान आया। एक ऐसा तूफान जिसने बड़े-बड़े

पहाड़ी वृक्षों को जड़ से उखाड़ फेंका। मुखिया के ऊँचे घर की छत उड़ गई और प्राचीन बौद्ध मन्दिर का बुर्ज टुकड़े-टुकड़े हो गया। उत्तरी हवाओं के बरफ़ानी खर्राटे चारों ओर ओले बरसाते रहे और फिर एक भयानक बरफबारी शुरू हुई जिसने सुबह होने तक महिंदर और खनेतर तथा ताशीपुर की घाटियों को बर्फ की एक श्वेत, गहरी चादर से ढाँप दिया, और दूसरे दिन दोपहर के समय जब ताशीपुर का बौद्ध सरदार अपनी दुल्हन को लेकर ताशीपुर को रवाना हुआ और बारात शहनाइयों के साथ अवन्तीपुर के मध्य की ऊँची घाटी पर से गुज़री तो बारातियों ने देखा कि घाटी में श्वेत बर्फ पर दूर तक पैरों के चिह्न पड़े हैं, और एक बड़े तनावर वृक्ष के नीचे एक अभागा राही मरा पड़ा है। उसका कुत्ता उसके पाँव में मुंह दिये अकड़ गया था। राही के हाथ उसकी छाती पर बँधे हुए थे और वह उसकी मज़बूत पकड़ में कोई चीज़ थामे हुए था—यह एक पतला कागज़ी चमड़े का बना हुआ विवाह का चप्पल था और उस पर चाँदी के तारों से कमल के दो सुन्दर सफेद फूल कढ़े हुए थे।

दो फर्लांग लम्बी सड़क

कचहरी से लेकर ला कालेज तक बस यही कोई दो फर्लांग लम्बी सड़क होगी। प्रतिदिन मुझे इसी सड़क पर से गुज़रना होता है। कभी पैदल, कभी साइकल पर। सड़क की दोनों ओर शीशम के सूखे-सूखे, उदास से वृक्ष खड़े हैं। इनमें न सुन्दरता है न छाँव। सख्त खुरदरे तने और शाखाओं पर गिद्धों के झुण्ड हैं और सड़क साफ़, सीधी और सख्त है। पूरे नौ वर्ष से मैं इस पर चल रहा हूँ। न इसमें कभी कोई गढ़ा देखा है न कोई छेद। सख्त-सख्त पत्थरों को कूट-कूट कर यह सड़क तैयार की गई है और अब इस पर कोलतार भी बिछी हुई है जिस की विचित्र प्रकार की दुर्गन्ध गर्मियों में तबीयत को परेशान कर देती है।

सड़कें तो मैंने बहुत-सी देखी-भाली हैं। लम्बी-लम्बी, चौड़ी-चौड़ी सड़कें, बुरादे से ढँपी हुई सड़कें जिन पर सुर्ख बजरी बिछी हुई थी। सड़कें जिनके गिर्द शमशाद के वृक्ष खड़े थे। सड़कें....परन्तु नाम गिनवाने से क्या लाभ ? ऐसे तो अगणित सड़कें देखी होंगी, परन्तु जितनी अच्छी तरह मैं इस सड़क को जानता हूँ अपने किसी घनिष्ट मित्र को भी नहीं जानता। पूरे नौ वर्ष से मैं इसे जानता हूँ और प्रतिदिन अपने घर से जो कचहरियों के पास ही है, उठकर दफ्तर जाता हूँ जो लॉ कालेज के पास ही है। बस, यही दो फर्लाङ्ग लम्बी सड़क

.......प्रतिदिन, सुबह और शाम कचहरियों से लेकर ला कालेज के अंतिम दरवाजे तक.......कभी साइकल पर और कभी पैदल ।

इसका रंग कभी नहीं बदलता । इसकी सूरत में तब्दीली नहीं आती । इसकी सूरत में पूर्ववत रूखापन मौजूद है, जैसे कह रही हो— मुझे किसी की क्या पर्वाह है ? और यह है भी सच, उसे किसी की पर्वाह क्यों हो ? सैंकड़ों, हज़ारों लोग, घोड़ा गाड़ियाँ, मोटरें इस पर से प्रति दिन गुज़र जाती हैं और पीछे कोई चिह्न बाकी नहीं रहता । इसका हल्का नीला और साँवला स्तर इसी प्रकार सख्त और पथरीला है जैसे पहले दिन एक यूरेशियन ठेकेदार ने उसे बनाया था ।

यह क्या सोचती है ? या शायद यह सोचती ही नहीं । मेरे सामने ही नौ वर्षों में इसने क्या-क्या घटनायें देखी हैं । प्रति दिन, प्रति क्षण यह क्या-क्या नये तमाशे नहीं देखती; परन्तु इसे किसी ने मुस्कराते नहीं देखा, न रोते ही । इसकी पथरीली छाती में कभी एक छिद्र भी उत्पन्न नहीं हुआ ।

"अरे बाबू, अंधे मुहताज, गरीब फ़कीर पर दया कर जाओ रे बाबा । अरे बाबू, भगवान के लिए एक पैसा देते जाओ रे बाबा...... अरे कोई भगवान का प्यारा नहीं । साहब जी, मेरे नन्हें-नन्हें बच्चे बिलख रहे हैं । अरे कोई तो दया करो इन यतीमों पर ।"

बीसियों भिखारी इस सड़क के किनारे बैठे रहते हैं । कोई अंधा तो कोई लुंज । किसी की टाँग पर एक खतरनाक घाव है, तो कोई निर्धन स्त्री दो-तीन छोटे-छोटे बच्चे गोद में लिए अभिलाषा-भरी नज़रों से पथिकों की ओर देख रही है । कोई पैसा दे देता है, कोई तेवरी चढ़ाये निकल जाता है । कोई गालियाँ दे रहा है—"हरामज़ादे, मुस्टंडे, काम नहीं करते, भीख माँगते हैं ।"

काम, बेकारी, भीख ।

दो लड़के साइकल पर सवार हँसते हुए जा रहे हैं । एक बूढ़ा अमीर व्यक्ति अपनी शानदार फिटन में बैठा सड़क पर बैठी हुई भिखारन की

ओर देख रहा है। एक मरियल-सा कुत्ता फिटन के पहियों के नीचे दब गया है। उसकी पसली की हड्डियाँ टूट गई हैं। रक्त वह रहा है। उसकी आँखों की उदासी, विवशता, उसकी हल्की-हल्की दर्द-भरी क्यायों-क्यायों किसी को भी अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। बूढ़ा आदमी अब गदेलों पर झुका हुआ उस स्त्री की ओर देख रहा है जो एक सुन्दर काले रंग की साड़ी पहने अपने नौकर के साथ मुस्करा-मुस्करा कर बातें करती जा रही है। उसकी काली साड़ी का चमकीला हाशिया बूढ़े की लालसापूर्ण आँखों में चाँद की किरण की तरह चमक रहा है।

फिर कभी सड़क सुनसान हो जाती है। केवल एक जगह एक शीशम के वृक्ष की छिदरी छाँव में एक ताँगेवाला घोड़े को सुस्ता रहा है। गिद्ध धूप में शाखाओं पर बैठे ऊँघ रहे हैं। पुलिस का सिपाही आता है—एक ज़ोर की सीटी, ओ तांगेवाले, यहाँ खड़ा क्या कर रहा है ? क्या नाम है तेरा ? करूँ चालान ? 'हजूर !' हजूर का बच्चा, चल थाने। 'हजूर ?' ....यह थोड़ा है........खैर जा तुझे छोड़ता हूँ।

ताँगेवाला ताँगे को सरपट दौड़ाये लिये जा रहा है। रास्ते में एक 'गोरा' आ रहा है। सिर पर ठेढ़ी टोपी हाथ में बेत की छड़ी, गालों पर पसीना, ओठों पर किसी डांस का सुर........

"खड़ा कर दो, कैन्टोनमेंट।"

"आठ आने साहब !"

"वैल, छः आना !"

"नहीं साहब !"

"क्या बकटा है, टुम......."

ताँगेवाले को मारते-मारते बेत की छड़ी टूट जाती है। फिर ताँगे-वाले का चमड़े का हंटर काम आता है। लोग एकत्रित हो रहे हैं। पुलिस का सिपाही भी पहुँच गया है—"हरामज़ादे, साहब बहादुर से

माफ़ी मागो।" तांगेवाला अपनी मैली पगड़ी के पल्लू से आँसू पोंछ रहा है। लोग बिखर जाते हैं।

अब सड़क फिर सुनसान है

शाम के धुन्धलके में बिजली के लट्टू चमकने लगे। मैंने देखा कि कचहरियों के निकट कुछ मज़दूर—बाल बखेरे......मैले वस्त्र पहने आपस में बातें कर रहे हैं।

"भैया भरती हो गया?"

"हाँ।"

"वेतन तो अच्छा मिलता होगा।"

"हाँ।"

"बढ़ियो के लिए कमा लायेगा। पहली बीबी तो एक फटी साड़ी में रहती थी।

"सुना है जंग शुरू होनेवाली है।"

"कब शुरू होगी?"

"कब? इसका तो पता नहीं—मगर हम गरीब ही तो मारे जायँगे।"

"कौन जाने गरीब मारे जायँगे कि अमीर।"

"नन्हा कैसा है?"

"बुखार नहीं टलता, क्या करें? इधर जेब में पैसे नहीं हैं उधर हकीम से दवा........"

"भर्ती हो जाओ।"

"सोच रहे हैं।"

"राम राम!"

"राम राम!"

फटी हुई धोतियाँ, नंगे पाँव, थके हुए कदम—ये कैसे लोग हैं। ये न तो स्वाधीनता चाहते हैं न स्वतन्त्रता। ये कैसी विचित्र बातें हैं—पेट, भूख, रोग, पैसे, हकीम की दवा, जंग।

लट्टुओं का पीला-पीला प्रकाश सड़क पर पड़ रहा है।

दो औरतें, एक बूढ़ी, एक जवान, उपलों के टोकरे उठाये, खच्चरों की तरह हाँपती हुई गुज़र रही हैं। जवान औरत की चाल तेज़ है।

"बेटी ! ज़रा ठहर तो" बूढ़ी औरत के चेहरे पर झुर्रियों का जाल है। उसकी चाल मध्यम है और स्वर में विवशता।

"बेटी ! ज़रा ठहर, मैं थक गई हूँ,.......मेरे भगवान्।"

"माँ, अभी घर जाकर रोटी पकानी है, तू तो बावली हुई है।"

"अच्छा बेटी, अच्छा बेटी !"

बूढ़ी औरत जवान औरत के पीछे भागती हुई जा रही है। बोझ के कारण उसकी टाँगें काँप रही हैं। उसके पाँव डगमगा रहे हैं।

वह दशाब्दियों से इसी सड़क पर चल रही है। उपलों का बोझ उठाये हुए, कोई उसका बोझ हलका नहीं करता। कोई उसे क्षण भर के लिए सुस्ताने नहीं देता। वह भागी हुई जा रही है। उसकी टाँगें काँप रही हैं। उसके पाँव डगमगा रहे हैं। उसकी झुर्रियों में चिंता है और भूख तथा दशाब्दियों की पराधीनता !

तीन-चार सुन्दर युवतियाँ भड़कीली साड़ियाँ पहने, बाहों में बाहें डाले चली जा रही हैं।

"बहन, आज शिमला पहाड़ी की सैर करें।"

"बहन, आज लारेंस गार्डन चलें।"

"बहन, आज अनारकली।"

"रीगल ?"

"शट अप यू फूल।"

आज सड़क पर लाल दलवान बिछा है। आर-पार झंडियाँ लगी हैं। यहाँ-वहाँ पुलिस के सिपाही खड़े हैं। किसी बड़े आदमी का आगमन है तभी तो पाठशालाओं के छोटे-छोटे लड़के नीली पगड़ियाँ बाँधे सड़क के दोनों ओर पंक्तियों में खड़े हैं। उनके हाथों में छोटी-छोटी झंडियाँ हैं। उनके ओठों पर पपड़ियाँ जम गई हैं। उनके चेहरे

धूप की गरमी से तमतमा उठे हैं, इसी प्रकार खड़े-खड़े वे डेढ़ घंटे से बड़े आदमी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। जब वे पहले-पहल यहाँ सड़क पर खड़े हुए थे तो हँस-हँस कर बातें कर रहे थे, अब सब चुप हैं। कुछ लड़के एक वृक्ष की छाँव में बैठ गये थे। अब अध्यापक उन्हें कान से पकड़ कर उठा रहे हैं। शफ़ी की पगड़ी खुल गई थी, अध्यापक उसे घूर कर कह रहा है, "ओ शफ़ी, पगड़ी ठीक कर"। प्यारेलाल की शलवार उसके पाँव में अटक गई है और नाड़ा जूतियों तक लटक रहा है "तुम्हें कितनी बार समझाया है प्यारेलाल!"

"मास्टरजी, पानी।"

"पानी कहाँ से लाऊँ, यह भी तुमने अपना घर समझ रखा है क्या! दो-तीन मिनट और इन्तज़ार करो, बस अभी छुट्टी हुआ चाहती है।"

दो मिनट, तीन मिनट, आधा घंटा।

"मास्टरजी पानी!"

"पानी मास्टर जी!"

"मास्टरजी बड़ी प्यास लगी है!"

परन्तु मास्टरजी अब उस ओर ध्यान ही नहीं देते। वे इधर-उधर दौड़ते-फिरते हैं। लड़को, होशियार हो जाओ देखो झंडियाँ इस तरह लहराना। अबे तेरी झंडी कहाँ है? कतार से बाहर होजा, बदमाश कहीं का......सवारी आ रही है।

मोटर साइकलों की फट-फट, बैंड का शोर, पतली और छोटी झंडियाँ बेदिली से हिलती हुईं—सूखे हुए कण्ठ से मरे-मरे-से नारे....

बड़ा आदमी सड़क पर से गुज़र गया। लड़कों की जान में जान आ गई। अब वे उछल-उछल कर झंडियाँ तोड़ रहे हैं। शोर मचा रहे हैं।

खौंचेवालों की आवाज़ें.........."रेवड़ियाँ, गरम चने, हलवा पूरी, नान कबाब।"

एक खोंचेवाला एक तुर्रे वाले बाबू से झगड़ रहा है—"आपने मेरा खोंचा उलट दिया। मैं आपको नहीं जाने दूँगा। मेरा तीन रुपये का नुक्सान हो गया। मैं गरीब आदमी हूँ। मेरा नुक़सान पूरा कर दीजिये तो मैं जाने दूँगा।"

सुबह के हल्के-हल्के प्रकाश में भंगी सड़क पर झाड़ू दे रहा है। उसके मुँह और नाक पर कपड़ा बँधा हुआ है— जैसे बैलों के मुँह पर जब वे कोल्हू चलाते हैं, वह धूल में अटा हुआ है और झाड़ू दिये जा रहा है।

म्यूनिसिपैलिटी का पानीवाला छकड़ा धीरे-धीरे सड़क पर छिड़काव कर रहा है। छकड़े के आगे जुते हुए दोनों बैलों की गरदनों पर घाव हो गये हैं। छकड़ेवाला ठिठुरता हुआ कोई गीत गाने की कोशिश रहा है। बैलों की आँखें देख रही हैं कि अभी सड़क का कितना भाग बाकी है।

सड़क के किनारे एक बूढ़ा भिखारी मरा पड़ा है। उसके मैले दाँत ओठों के भीतर धँस गये हैं। उसकी खुली हुई ज्योतिहीन आँखें आकाश की ओर ताक रही हैं।

भगवान के लिए मुझ गरीब पर दया कर जाओ रे बाबा।

कोई किसी पर दया नहीं करता। सड़क मौन और सुनसान है। यह सब कुछ देखती है, सुनती है; परन्तु टस से मस नहीं होती। मनुष्य के मन की तरह निर्दयी और वहशी है।

अत्यन्त दुःख और क्रोध की हालत में मैं प्रायः सोचता हूँ कि यदि इसे डायनामैट लगाकर उड़ा दिया जाय तो फिर क्या हो। एक धमाके के साथ इसके टुकड़े आकाश में उड़ते नज़र आयेंगे। उस समय मुझे कितनी प्रसन्नता प्राप्त होगी, इसका कोई अनुमान नहीं कर सकता। कभी-कभी इस पर चलते मैं पागल-सा हो उठता हूँ। चाहता हूँ कि उसी दम कपड़े फाड़कर नंगा सड़क पर नाचने लगूँ और चिल्ला-चिल्ला कर कहूँ—मैं मनुष्य नहीं हूँ, मैं पागल हूँ, मुझे मनुष्यों से घृणा है—

मुझे मनुष्यों से घृणा है—मुझे पागलखाने की दारुणता प्रदान कर दो, मैं इन सड़कों की स्वतन्त्रता नहीं चाहता।

सड़क मौन है और सुनसान। ऊँची शाखाओं पर गिद्ध बैठे ऊँघ रहे हैं।

यह दो फर्लांग लम्बी सड़क है!

पुराने खुदा

मथुरा के एक ओर जमना है और तीन ओर मन्दिर। इस क्षेत्रफल में नाई, हलवाई, पंडे, पुजारी और होटलवाले बसते हैं। जमना अपना रुख बदलती रहती हैं। नये-नये विशाल विराट् मन्दिर भी बनते रहते हैं; परन्तु मथुरा का क्षेत्रफल वही रहता है। उसकी आबादी में कोई कमी-बढ़ती नहीं होने पाती, केवल उन दिनों को छोड़ कर जब जन्माष्टमी का मेला होता है। कृष्णजी के भक्त अपने भगवान का जन्मदिन मनाने के लिए भारत के चारों कोनों से खिंचे चले आते हैं। इन दिनों कृष्णजी के भक्त मथुरा पर हल्ला बोल देते हैं और मद्रास से, कराची से, रंगून से, पेशावर से, हर ओर से रेल-गाड़ियाँ आती हैं और मथुरा के स्टेशन पर हज़ारों यात्री उगल देती हैं। यात्री समुद्र की लहरों की तरह बढ़ते चले आते हैं और मन्दिरों, घाटों, होटलों और धर्मशालाओं में समा जाते हैं। मथुरा में कृष्ण-भक्तों के स्वागत के लिए पन्द्रह-बीस दिन पहले ही तैयारियाँ आरम्भ हो जाती हैं। मन्दिरों में सफ़ाई शुरू होती है। फ़र्श धुलाये जाते हैं। कलसों पर धात-पालिश चढ़ाया जाता है। पंगूड़े और झूले सजाये जाते हैं। दीवारों पर रंग-रोगन होता है। दरवाज़ों पर बेल-बूटे बनाये जाते हैं। दुकानें राधा-कृष्णजी की मूर्तियों से सजाई जाती हैं। हलवाई पूरी-कचौरी के लिए बनस्पति घी के टीन इकट्ठे करते हैं। होटलों के किराये दुगने

बल्कि तीनगुने हो जाते हैं—धर्मशालायें चूँकि धर्मार्थ होती हैं इसलिए उनके मैनेजर एक कमरे के लिए केवल एक रुपया वसूल करते हैं। किसान लोग जो इन धर्मार्थ धर्मशालाओं में ठहरने की शक्ति नहीं रखते, प्रायः जमना के किसी घाट पर ही सो रहते हैं। घाट चूँकि पक्की ईंटों के बने होते हैं इसलिए घाट के व्यवस्थापक यात्रियों से एक आना प्रति व्यक्ति वसूल कर लेते हैं, और असल में घाट पर सोने के लिए एक आने का दण्ड बहुत कम है। जमना का तट, सिर पर कदम की छाया, जमना की लहरों की मीठी-मीठी लोरियाँ, ठंडी-ठंडी वायु, तारों-भरा आकाश और मन्दिरों के चमकते हुए कलस। जब जी चाहा सो रहे, जब जी चाहा उठकर जमना में डुबकियाँ लगाने लगे। एक आने में दो मज़े। इस पर भी बहुत से किसान लोग घाट के निर्धन व्यवस्थापक को एक आना किराया भी नहीं चुकाना चाहते और घाट पर सोने और जमना में नहाने के मज़े मुफ्त में लूटना चाहते हैं। मानव का स्वाभाविक कमीनापन........।

जन्माष्टमी से दो दिन पूर्व मैं मथुरा में आ पहुँचा। मथुरा के बाज़ार, गलियाँ और मन्दिर यात्रियों से खचा-खच भरे हुए थे और यात्रियों के समूह को भिन्न-भिन्न मन्दिरों में प्रविष्ट कर रहे थे। इन यात्रियों की शक्लें देख कर मुझे लगा कि मथुरा में भारत भर की बूढ़ी स्त्रियाँ एकत्रित हो गई हैं, बूढ़ी औरतें मालायें फेरती हुईं—और लाठी टेक कर चलते हुए पुरुष खाँसते हुए, गठिया के मारे हुए लोग जो यहाँ अपने पाप धोने की आशा में आये थे। जितनी कुरूपता मैंने यहाँ एक घंटे में देख ली उतनी शायद मैं अपनी सारी आयु में भी न देख पाता। मथुरा का यह उपकार मैं आयु भर नहीं भूल सकता।

मथुरा पहुँचते ही सबसे पहले मैंने अपने रहने के लिए स्थान तलाश किया। होटलवालों ने बरामदे तक किराये पर उठा दिये थे। उसकी खिड़कियाँ, दरवाजों आदि पर यहाँ-वहाँ यात्रियों की गीली धोतियाँ

हवा में लहरा रही थीं। धर्मशालाएँ भिड़के छत्तों की तरह यात्रियों से भरी पड़ी थीं। कोई मन्दिर केवल बंगालियों के लिए था तो कोई मद्रासियों के लिए। किसी धर्मशाला में केवल नम्बूदरी ब्राह्मणों के लिए स्थान था तो किसी में केवल कायस्थ ठहर सकते थे। इस सराय में यदि अग्रवालों को प्रधानता दी जाती थी तो दूसरी सराय में केवल अमृतसर के अरोड़े ठहर सकते थे। एक धर्मशाला में एक कमरा खाली था। मैंने हाथ जोड़ कर पण्डा जी से कहा—"मैं हिन्दू हूँ। यह देखिये मेरे हाथ पर मेरा नाम खुदा हुआ है। अगर आप अंग्रेज़ी नहीं पढ़ सकते तो चलिये बाज़ार में किसी से पढ़वा लीजिये। गरीब यात्री हूँ। अपनी धर्मशाला में जगह दे दीजिये, आपका बड़ा उपकार होगा।"

पण्डाजी की आँखें मस्त थीं और भंग से लाल। जनेऊ का पवित्र धागा नंगे पेट पर लहरा रहा था। कमर में राम-नाम की धोती थी। कुछ क्षणों तक चुपचाप खड़े मुझे घूरते रहे, फिर विघियाई आवाज़ में, जिसमें पान के चूने और कत्थे के बुलबुले से उठते दिखाई देते थे, बोले—"आप कौन हो?"

मैंने झल्ला कर कहा—"मैं मनुष्य हूँ, हिन्दू हूँ, काला शाह काकू से आया हूँ।"

"न न" पांडेजी ने अपना बाँया हाथ गौतम बुद्ध की तरह ऊपर उठाते हुए कहा—"हम पूछते हैं आप कौन गोत्र हो?"

"गोत्र!" मैंने रुक कर कहा—"मुझे अपनी गोत्र तो याद नहीं, लेकिन कोई न कोई गोत्र होगी ज़रूर। आप मुझे अभी अपनी धर्म-शाला—इस धर्मार्थ धर्मशाला में रहने का स्थान दे दें, मैं घर पर तार देकर अपनी गोत्र मंगवाये लेता हूँ।"

"न न!" पण्डाजी ने पान की पीक ज़ोर से ज़मीन पर फेंकते हुए कहा—"हम ऐसो मानस कैसो राखें, न गोत, न जात।"

मैं मथुरा के बाज़ारों में घूम रहा था। वातावरण में कचौरियों की कड़वी बू, जमना के महीन कीचड़ की सड़ाँद और वनस्पति घी की

गंदी बास चारों ओर फैली हुई थी। मथुरा की मिट्टी यात्रियों के कदमों में थी, उनके वस्त्रों में थी, उनके सिर के बालों में, नाक के नथनों में, कण्ठ में—मेरा दम घुटा जाता था और यात्री 'श्रीकृष्ण महाराज की जय' बोल रहे थे। मेरा सिर घूम रहा था। मुझे रहने के लिए अभी तक कहीं जगह न मिली थी। एक पनवाड़ी की दुकान पर मैंने एक सुन्दर नौजवान को देखा जो सिर से पाँव तक श्वेत खद्दर पहने, पान कल्ले में दबाये खड़ा था। आँखों और चेहरे से बुद्धिजीवी प्रतीत होता था।

मैंने उसे बाँह से पकड़ लिया।

"मिस्टर," मैंने उसे अत्यन्त कटु स्वर में कहा—"क्या आप मुझे जेलखाने के अतिरिक्त यहाँ कोई अन्य ऐसा स्थान बता सकते हैं जहाँ एक ऐसा व्यक्ति जो मनुष्य हो, हिन्दू हो, पंजाबी हो, काला शाह काकू से आया हो और जिसे अपने गोत्र का ज्ञान न हो, मेले के दिनों में अपना सिर छिपा सके?"

नौजवान कुछ देर तक मौन रहा। कुछ देर तक मुझे घूरता रहा, फिर मुस्करा कर बोला—"आप पंजाबी हैं न? इसीलिए आपको यह कष्ट हो रहा है........वास्तव में बात यह है कि........क्षमा कीजियेगा ....पंजाबी बड़े बदमाश होते हैं। यहाँ से लड़कियाँ भगा ले जाते हैं।"

"और उन लड़कियों के बारे में आपका क्या विचार है जो इस प्रकार भाग जाती हैं?" मैंने पूछा।

एक दुबला-पतला व्यक्ति, जो बाँस की तरह लम्बा था और जिसका मुँह छछूँदर का-सा, खद्दरधारी नौजवान की हाँ में-हाँ मिलाता हुआ बोला—"बाबू साहब! आप मथुरा की बात क्यों करते हैं! मथुरा तो पवित्रनगरी है। मैं तो बम्बई तक घूम आया हूँ। वहाँ भी पंजाबियों को शरीफ मुहल्लों में कोई घुसने नहीं देता।"

दो-चार लोग हमारे इर्द-गिर्द एकत्रित हो गये। मैंने आस्तीन चढ़ाते हुए कहा—"क्या आपने इतिहास का अध्ययन किया है?"

"जी हाँ।" सुन्दर नौजवान ने पान चबाते हुए उत्तर दिया।

"तो आपको मालूम होगा कि पंजाब सबसे अंत में अँग्रेज़ों के अधीन हुआ था। और छोटी बच्चियों को जान से मार डालने की जो प्रथा भारत के अन्य प्रान्तों में प्रचलित थी, पंजाब में सबसे बाद में नियम-विरुद्ध करार दी गई। अंग्रेज़ों के आने से पूर्व शरीफ़ लोग प्रायः अपनी लड़कियों को पैदा होते ही मार डालते थे।"

"इससे क्या हुआ?"

"हुआ यह कि पंजाब में पुरुषों और स्त्रियों का अनुपात ५:१ हो गया—पांच पुरुष और एक स्त्री। अब बताइये अन्य चार पुरुष कहाँ जायँ। धर्म इस बात की आज्ञा नहीं देता कि हर स्त्री एक साथ चार-पाँच पतियों के साथ रह सके जैसा कि तिब्बत देश में होता है। क्या आप इस बात की आज्ञा देते हैं?"

नौजवान हँसने लगा।

मैंने कहा—"पंजाब में लड़कियाँ कम हैं। पंजाबियों ने अन्य प्रान्तों पर हाथ साफ़ करना शुरू किया। बंगाल में लड़कियाँ अधिक हैं। वहाँ लोग एक पत्नी रखते हैं और एक दाश्ता जो प्रायः विधवा होती है। सिंधी और गुजराती पुरुष समुद्र-पार व्यापार के लिए जाते हैं और घरों से कई-कई साल गायब रहते हैं। इसीलिए सिंध में ओ३म् मंडलियाँ बनती हैं और गुजरात में बकरी के दूध और ब्रह्मचर्य का प्रचार होता है। रोग एक ही है। अब आप ही बताइये कि शरीफ़ कौन है और बदमाश कौन? जो वास्तविकता है उसका आप सामना नहीं करना चाहते। उलटा पंजाबियों को कोसते हैं।"

नौजवान कहकहा मारकर हँसा। पान गले से मोरी में जा गिरा। वह मेरी बाँह-में-बाँह डालकर कहने लगा—"आइये साहब! मैं आप को अपने घर लिये चलता हूँ।"

थोड़े ही समय में हम एक-दूसरे के मित्र बन गये। वह नौजवान् एक वकील था। एक सफल वकील! उसके चेहरे से उसके बुद्धिजीवी होने का पता चलता था और चौड़े माथे और मज़बूत ठोड़ी से वह दृढ़ संकल्प का प्राणी प्रतीत होता था। वह एक मद्रासी ब्राह्मण था। मथुरा में सबसे पहले उसका दादा आया था। कहते हैं कि उसके दादा के किसी सम्बन्धी ने, जो मद्रास में एक मन्दिर का पुजारी था, किसी आदमी को कत्ल कर दिया था। ठाकुरजी को एक पुजारी के पाप से बचाने के लिए मेरे मित्र के दादा ने एक रात मन्दिर से ठाकुरजी की मूर्ति को उठा लिया और एक घोड़े पर सवार होकर चल दिया। सफ़र करते-करते वह मथुरा आ पहुँचा। यहाँ पहुँच कर उसकी आत्मा को शान्ति मिली और उसने ठाकुरजी को एक मन्दिर में स्थापित कर दिया। आज उसी दादा का पोता मेरे सामने मन्दिर की दहलीज़ पर खड़ा था और मैं उसके गठे हुए शरीर और चेहरे के तीखे नयन-नक्श में उस बूढ़े ब्राह्मण के संकल्प और विश्वास को देख रहा था जिसका चित्र उसकी बैठक में लटक रहा था।

नहा-धोकर और खाने से निबट कर हम मेले की सैर को निकले। जो गली विश्रामघाट की ओर जाती थी उसमें सैकड़ों नाई बैठे उस्तरों से यात्रियों का सिर मूँड़ रहे थे। गोल-गोल, चमकते हुए, मुँड़े हुए सिर उन छतरियों-जैसे दीख पड़ते थे जो वर्षा ऋतु में आप-ही-आप ज़मीन में से निकल आती हैं। जी चाहता था कि उन श्वेत छतरियों पर बड़े स्नेह से हाथ फेरा जाय। इतने में एक नाई ने मेरी आँखों के सामने एक चमकदार उस्तरा घुमाया और मुस्कराकर बोला—बाबूजी सिर मुँड़ा लो, बड़ा पुण्य होगा, मैंने अपने मित्र से पूछा—ये यात्रीलोग सिर क्या मुँड़ाते हैं? कहने लगा—दान-पुण्य करने के लिए। ये लोग अपने मरे हुए बुज़ुर्गों के लिए दान-पुण्य करना चाहते हैं और उसके लिए सिर मुँड़ाना बहुत ज़रूरी है और यहाँ ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिस का अब तक कोई बुज़ुर्ग न मरा हो। मैंने उत्तर दिया, मेरी चँदिया

पर पहले ही थोड़े से बाल हैं, मैं इन्हें नाई की पकड़ से सुरक्षित रखना चाहता हूँ क्योंकि मैं समझता हूँ कि एक बाल जो चँदिया पर है उन बालों से कहीं उत्तम है जो नाई की मुट्ठी में हों। हम लोग जल्दी-जल्दी कदम उठाते हुए विश्रामघाट पहुँच गये। घाट पर बहुत-सी नावें खड़ी थीं और लोग उनमें बैठकर जमना जी की सैर को जा रहे थे। हमने भी एक नाव ली और तीन घंटे तक जमना में घूमते रहे। जमना के किनारे पक्के घाट बने हुए थे। कहीं-कहीं मन्दिरों और धर्मशालाओं की चौबुर्जियाँ और कदम के वृक्ष खड़े नज़र आ जाते। एक जगह जमना के किनारे एक प्राचीन टूटे-फूटे महल के कंगूरे नज़र आये। पूछने पर मेरे मित्र ने बताया कि उसे कंस-महल कहते हैं। मैंने कहा, तीन-चार सौ वर्ष से अधिक पुराना मालूम नहीं होता। कहने लगा—हाँ! इसे किसी मरहठा सरदार ने बनवाया था। अब अंधविश्वास रखनेवालों को प्रसन्न करने के लिए यह कह दिया जाता है कि यह उसी कंस का महल है जिसके अत्याचारों को समाप्त करने के लिए भगवान् ने जन्म लिया था। मैंने पूछा—किस युग में अत्याचार नहीं होते? वह हँसकर बोला, अगर यही पूछना था तो मथुरा क्यों आये.......वह देखो, रेल का पुल! मथुरा में सबसे अधिक सुन्दर चीज़ शायद यही रेल का पुल है। मज़बूत और ऊंचा। रेलगाड़ी बड़ी शान से जमना की छाती के ऊपर दनदनाती हुई चली जा रही है। कहते हैं कि कृष्णजी के जन्म पर जमना श्रद्धावश उमड़ी चली आई थी और जब तक उसने कृष्ण-जी के पाँव न छू लिये उसकी लहरों का तूफान समाप्त न हुआ था। जमना में अब भी तूफान आते हैं परन्तु उसकी लहरों का तूफान गाड़ी के पाँव भी नहीं छू सकता जो उसकी छाती पर दनदनाती हुई चली जा रही है। जमना का घमंड सदैव के लिए समाप्त हो चुका है।

जब हम वापस आये तो सूर्य अस्त हो रहा था और विश्रामघाट पर आरती उतारी जा रही थी। औरतें राधेश्याम, राधेश्याम गाती हुई जमना में नहा रही थीं। शंख और घड़ियाल ज़ोर-ज़ोर से बज

रहे थे। यात्री चढ़ावा चढ़ा रहे थे और जमना में फल फेंक रहे थे। पण्डे दक्षिणा सँभालते जाते थे और साथ-साथ आरती उतारते जाते थे। एक पण्डे ने एक निर्धन किसान को गर्दन से पकड़कर घाट से बाहर निकाल दिया, क्योंकि किसान के पास दक्षिणा के पैसे न थे। शायद किसान समझता था कि भगवान की आरती पैसों के बिना भी हो सकती है। विश्रामघाट की निचली सीढ़ियों तक जमना बहती थी परन्तु यहाँ पानी कम था और कीचड़ अधिक और उस कीचड़ में, सैकड़ों छोटे-छोटे कछुए कुलबला रहे थे और मिठाइयाँ और फल खा रहे थे। उनके मुलायम मटियाले शरीर उन यात्रियों की नंगी खोपड़ियों की तरह नज़र आते थे जिनके बाल नाइयों ने मूँड़कर साफ़ कर दिये थे। "राधेकृष्ण! राधेकृष्ण!" यात्री चिल्ला रहे थे। नव-विवाहित जोड़े नावों में बैठे मिट्टी के दीये जलाकर उन्हें जमना की छाती पर बहा रहे थे। जमना की छाती पर इस प्रकार के सैकड़ों दीये जल रहे थे और नव-विवाहित जोड़े प्रसन्नतापूर्ण नज़रों से एक-दूसरे की ओर ताक रहे थे। हमारे बिलकुल निकट ही एक पीली-सी नौजवान लड़की ने मिट्टी के दो दीये जलाये और उन्हें जमना के अर्पण कर दिया। देर तक वह वहाँ खड़ी अपने हाथ छाती पर रखे उन दीयों की ओर देखती रही और हम उसकी आँखों में चमकनेवाले आँसुओं की ओर देखते रहे। उस युवती के साथ उसका पति नहीं था, न वह विवाहिता मालूम होती थी। फिर उन झिलमिलाते दीयों की लौ को उसने अपनी छाती से चिपटा लिया था। यह काँपता हुआ प्रेम-दीप........लड़की ने एकाएक मेरे मित्र की ओर देखा और फिर सिर झुकाकर धीरे-धीरे घाट की सीढ़ियाँ चढ़ती हुई चली गई। मेरे मित्र के ओठ भिंचे हुए थे, गालों पर पीलिमा खिंड़ी हुई थी। क्या जमना में इतनी शक्ति नहीं थी कि प्रेम के दो काँपते हुए शोलों को आलिंगन कर लेने दे। ये दीवारें, ये पानी की दीवारें, पैसे की दीवारें, समाज, जात-पात और गोत की दीवारें ....। मेरा मन असाधारण रूप से उदास हो गया और मैंने सोचा।

कि मैं कल मथुरा से अवश्य कहीं बाहर चला जाऊँगा । वृन्दावन में या शायद गोकुल में जहाँ के स्वच्छ, निर्मल और पवित्र वातावरण में मेरे मन को शांति प्राप्त होगी ।

वृन्दावन में वन कम था और पक्की गलियाँ और खुली सड़कें अधिक थीं । वृन्दावन के आलीशान मन्दिरों की महानता और लम्बाई-चौड़ाई पर महलों का धोखा होता था । राजा मानसिंह का मन्दिर और मीरा का मन्दिर जिसकी इमारत के बाहर कृष्णजी की मूर्ति स्थापित थी । हर जगह पण्डे मौजूद थे, परन्तु एक बात में वृन्दावन मथुरा से बढ़ा हुआ था । वृन्दावन में गाइड भी मौजूद थे—अंग्रेजी बोलनेवाले, पढ़े-लिखे गाइड । पहले लोग मन्दिरों में बेखटके चले जाया करते थे । अब भगवान ने गाइड रख लिए थे । भगवान वही पुराने थे, परन्तु आधुनिक सभ्यता की समस्त व्यंजनाओं से जानकार। आखिर यह नई सभ्यता भी तो उन्हीं की बनाई हुई थी ।

वृंदावन के एक मन्दिर में मैंने देखा कि एक बहुत बड़ा हाल है जिसमें सात-आठ सौ साधु हाथ में करतालें लिए एक साथ गा रहे हैं, राधेश्याम, राधेश्याम........लैफ्ट राइट, लैफ्ट राइट, नियमपूर्वक संगठन, अन्धापन, सभ्यता और शक्ति के हज़ारों रहस्य उस दर्द-भरे दृश्य में मौजूद थे । हर रोज़ सैकड़ों बल्कि हज़ारों यात्री उस मन्दिर में आते थे और बेहिसाब चढ़ावा चढ़ता था । सुना है कि उन अन्धे साधुओं को सुबह-शाम दोनों समय खाना मिल जाता था और एक पैसा दक्षिणा का । बाकी जो लाभ होता वह एक विशालकाय पण्डे की तिजोरी में चला जाता । एक और मन्दिर में भी मैंने ऐसा ही दृश्य देखा, अन्तर केवल यह था कि यहाँ अंधे साधुओं के बजाय मजबूर और बेबस औरतें कृष्ण भगवान की स्तुति कर रही थीं । दिन-भर स्तुति करने के बाद उन्हें भी वही राशन मिलता था जो अंधे साधुओं को मिलता था—अर्थात् दो समय का खाना और एक पैसा दक्षिणा का । इन अन्धे साधुओं और औरतों के सिर मुँडे हुए थे जिन्हें

देखकर मुझे विश्रामघाट के यात्री और जमना के कीचड़ में कुल-बुलाते हुए कछुए याद आगये। धर्म ने मन्दिरों में फैक्ट्रियाँ खोल रखी थीं और भगवान को लोहे की सलाखों में बन्द कर दिया था। हर मन्दिर में हरेक यात्री को कुछ-न-कुछ ज़रूर देना पड़ता था। कई बार तो एक ही मन्दिर में भिन्न-भिन्न स्थानों पर दक्षिणा के रेट अलग-अलग थे। सीढ़ियों को छूने के लिए आना, मन्दिर की चौखट तक आने के लिए चार आने। मन्दिर के किवाड़ प्रायः बन्द रहते थे और एक रुपया देकर यात्री मन्दिर के किवाड़ खोलकर भगवान के दर्शन कर सकता था। कई एक मन्दिर ऐसे थे जो साल में केवल एक बार खुलते थे और कोई बड़ा सेठ ही उनकी 'बोहनी' कर सकता था और बहुत-सा रुपया अदा करके मन्दिर के किवाड़ खोल सकता था। वेश्यापन हमारे समाज का कितना आवश्यक अंग है, इस बात का अनुभव मुझे ऐसे मन्दिरों को ही देखकर हुआ।

गोकुल में जमना के किनारे तीन औरतें रेत पर बैठी रो रही थीं। मारवाड़ से कृष्ण भगवान के दर्शन करने आई थीं—ज़ेवरों से लदी-फँदी। एक साधु महात्मा ने उन्हें अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों में फँसा लिया और ज्ञान-ध्यान की बातें करते-करते उन्हें भिन्न-भिन्न मन्दिरों में लिये फिरा और जब ये मारवाड़ी औरतें गोकुल में माखनचोर कन्हैया का घर देखने आईं तो यह महात्मा भी उनके साथ हो लिया। औरतें जमना में स्नान कर रही थीं और साधु किनारे पर उनके ज़ेवरों और कपड़ों की रखवाली कर रहा था। जब औरतें नहा-धोकर घाट से बाहर निकलीं तो महात्माजी गायब थे। औरतें सिर पीटने लगीं। कृष्णजी माखन चुराते थे तो साधु-महात्मा ने यदि कुछ ज़ेवर चुरा लिए तो कौन-सा बुरा काम किया। परन्तु महात्मा की यह तुक उन मूर्खा नारियों की समझ में न आती थी और वे जमना की गीली रेत पर बैठी महात्माजी को गालियाँ दे रही थीं। बहुत-से लोग उनके आसपास खड़े थे और तरह-तरह की बातें कर रहे थे।

"जी बड़ा अत्याचार हुआ है इन गरीब औरतों पर........"

"भला ये घर से ज़ेवर लेकर आई ही क्यों थीं ?"

"अपनी दौलत दिखाना चाहती थीं, अब रोना किस बात का है......"

"अजी साहब शुक्र कीजिये इनकी जान बच गई। अभी कल ही मथुरा में एक पण्डे ने अपने जजमान और उसकी स्त्री को अपने घर ले जाकर कत्ल कर दिया। जजमान का नया-नया ब्याह हुआ था। बीबी के पास साठ-सत्तर हजार के ज़ेवर थे....किसी मद्रासी जागीरदार का लड़का था जी, इकलौता लड़का था....उसके बाप को पुलिस ने तार दिया है। ख्याल तो कीजिये कैसा अंधेर मच रहा है इस पवित्र नगरी में....मथुरा तीन लोक से न्यारी।"

बहुत रात गये मैं और मेरा मित्र जमना के उस पार खेतों में घूमते रहे। जन्माष्टमी की रात थी। फूस की झोंपड़ियों में, जिनमें ग़रीब मज़दूर और किसान रहते थे, मिट्टी के दीये जल रहे थे और जमना के दूसरे किनारे घाटों पर बिजली के लट्टू। और ब्राह्मणों के कहकहों की आवाज़ें वातावरण में गूँज रही थीं। फूस के झोंपड़ों के बाहर मरियल-सी गायें बँधी थीं और अर्द्धनग्न लड़के मिट्टी में खेल रहे थे। कुँए की जगत पर एक बूढ़ी औरत धीरे-धीरे डोल खैंच रही थी। दो बड़ी-बड़ी गागरें उसके पास पड़ी थीं। कुंए से आगे आम के वृक्षों की कतार थी जो बहुत दूर तक फैली हुई चली गई थी। आम के वृक्ष और आँवले के पेड़ और खिरनी के छतनारें। यहाँ गहरी चुप्पी थी। वायु में एक हल्की उदास-सी बास थी और सितारों की रोशनी में सफ़ेदी की अपेक्षा स्याही अधिक घुली हुई थी जैसे यह रोशनी खुल कर हँसना चाहती थी; परन्तु शाम की उदासी को देखकर रुक जाती थी।

मेरे मित्र ने धीरे से कहा। मैं और वह कई बार खिरनी के छतनारों के तले एक दूसरे के हाथ में हाथ दिये घूमते रहे हैं....कितनी ही जन्माष्टमियाँ इस प्रकार गुज़र गईं और आज......"

मैं चुप रहा।

"कुछ दिन हुए" मेरा मित्र कह रहा था—"मुझे क़त्ल के एक मुकदमे में पेश होना पड़ा। क़ातिल को क़त्ल होनेवाले की बीबी से प्रेम था...और जब उसे फाँसी का हुक्म सुनाया गया तो क़ातिल किसान ने जिन खेदपूर्ण नज़रों से अपनी प्रेमिका की ओर देखा—वे नज़रें अब तक मेरे दिल में तीर की तरह चुभी जाती हैं।"

वे दोनों बचपन से एक-दूसरे को चाहते थे। वर्षों से एक-दूसरे से प्रेम करते थे। फिर लड़की के माँ-बाप ने उसका विवाह किसी दूसरी जगह कर दिया....यह जमना पर लोग दीये किसलिए जलाते हैं? बड़े होकर अपने ही बेटों और बेटियों के गले पर किस प्रकार छुरी चलाते हैं। वह किसान औरत अब पागलखाने में है......"

मैंने कहा—"प्रेम भी प्रायः बेवफ़ा होता है। राधा को कृष्ण से प्रेम था; परन्तु राधा और कृष्ण के बीच में बादशाहत की दीवार आ गई.......।"

उसने कहा—"शायद तुम्हें राधा और कृष्ण के प्रेम के अंत का ज्ञान नहीं?"

"नहीं।"

वह कुछ देर तक मौन रहा। फिर धीरे से कहने लगा—"कृष्ण-जी ने वृन्दावन की गोपियों से प्रण किया था कि वे एक बार फिर वृन्दावन में आयेंगे और हर गोपी के घर का दरवाज़ा तीन बार खट-खटायेंगे। जिस घर में प्रकाश होगा और जो गोपी दरवाज़ा खटखटाने पर उनका स्वागत करेगी वे उसी के प्रेम को सच्चा जानेंगे—इस बात को कई साल गुज़र गये।

"एक अंधेरी तूफ़ानी रात में जब बिजली कड़क रही थी और मूसलाधार वर्षा हो रही थी किसी ने वृन्दावन के घरों के दरवाज़े खटखटाने शुरू किये। काले लबादे में लिपटा हुआ एक अपरिचित व्यक्ति हर एक दरवाज़े को तीन बार खटखटाता और फिर आगे बढ़

जाता ....परन्तु सब घरों में अँधेरा था। सब लोग सोये पड़े थे। किसी ने उठकर दरवाज़ा न खोला।

वह व्यक्ति निराश होकर जाने ही को था कि उसने देखा दूर—एक झोंपड़ी में मिट्टी का दीया झिलमिला रहा है। वह उस झोंपड़ी की ओर तेज़-तेज़ क़दमों से बढ़ा; परन्तु उसे दरवाजा खटखटाने की आवश्यकता ही न हुई। दरवाज़ा खुला था। झोंपड़ी में दीये के प्रकाश में राधा बैठी थी—अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में। राधा के सिर के बाल श्वेत हो चुके थे और चेहरे पर झुर्रियों का जाल था।

कृष्णजी ने भरे स्वर में कहा—"राधा, मैं आ गया हूँ।"

परन्तु राधा मौन बैठी दीये की लौ की ओर ताकती रही।

"राधा, मैं आ गया हूँ।" कृष्णजी ने चिल्लाकर कहा—

परन्तु राधा ने कुछ देखा न सुना। अपने प्रेमी की राह तकते-तकते उसकी आँखें अंधी हो चुकी थीं और कान बहरे। ....जीवन से परे........मृत्यु से परे........न्याय से परे......."

मेरी आँखों में आँसू आ गये। मेरा मित्र अपनी बाँहों में सिर छुपाकर सिसकियाँ भरने लगा जैसे किसी ने उसकी गर्दन में फाँसी का फंदा डाल दिया हो। जैसे पागल औरत प्रेम करने के अपराध में लोहे की सलाखों के पीछे बन्द कर दी गई हो। पीली लड़की विश्राम-घाट पर खेदजनक नज़रों से मिट्टी के दीयों की ओर तक रही थी। उसकी हैरान पुतलियाँ मेरी आँखों के आगे नाचने लगीं। अंधे साधु, सिर मुंडाये क़तार-दर-क़तार खड़े थे और करतालें बजाते हुए गा रहे थे—राधेश्याम—राधेश्याम—राधेश्याम—लैफ्ट राइट, लैफ्टराइट, लैफ्ट-राइट। पुराने भगवान अभी तक मन्दिरों, बैंकों, फैक्ट्रियों और खेतों पर अधिकार जमाये बैठे थे। वे अपने बहीखाते खोले, आलती-पालती मारे बैठे थे। उनकी नंगी तोंदों पर जनेऊ लहरा रहे थे और वे बड़ी तन्मयता से उन लाखों आवाज़ों को सुन रहे थे जो वातावरण में चारों ओर मधु-मक्खियों की तरह भिनभिना रही थीं...."राधेश्याम...राधेश्याम....।"

तीन गुण्डे

उसका नाम अब्दुल समद था। वह भिंडी बाज़ार में रहता था। केवल इसी कारण से बहुत-से लोग उसे गुण्डा कहते थे—होगा, परन्तु उस बेचारे को जीवन-भर यह पता न चला कि वह गुण्डा है। प्रायः लोगों को अपने जीवन में अपने सम्बन्ध में थोड़ा-बहुत ज्ञान होता है। उदाहरणतः यह कि लोग उन्हें अच्छा समझते हैं या बुरा? वह शरीफ़ है या बदमाश? औरतों को अपनी माँ-बहन समझते हैं या अपनी होनेवाली प्रेमिका। वे विश्वास के पात्र समझे जाते हैं या झूठे मक्कार? शान्ति के दुश्मन या शान्ति-प्रिय? उन्हें अपने सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ पता चलता रहता है; परन्तु बेचारे अब्दुल समद को आज तक—कमर में गोली लगने तक पता न चला कि वह एक गुण्डा है। उसे गोली कैसे लगी, यह तो मैं आपको बाद में बताऊँगा। इस समय मैं केवल यह बताना चाहता हूँ कि अब्दुल समद एक गुण्डा था जो फाइन आर्ट ऐण्ड प्रिन्टिङ्ग वर्क्स में काम करता था, जो वज़ीर रैस्तोरां के निकट एक सुर्ख ईंटोंवाली दो-मंज़िला इमारत में है और जिसके सामने ट्राम का अड्डा है और जो आजकल जलकर राख हो चुका है। हिन्दुस्तानियों और अंग्रेज़ों की पुरानी दुश्मनी के कारण, इस लड़ाई में हिन्दुस्तानियों की हज़ारों जानों का नुकसान तो हुआ; परन्तु बेचारे अंग्रेज़ों के कई हज़ार कारतूस मुफ्त में फुँक गये।

अब्दुल समद इसी फाइन आर्ट प्रेस में नौकर था। लिथो के भारी पत्थर उठाकर मशीन पर जमाना, यह उसका काम था। अन्य मज़दूर तो कठिनता से एक समय में एक पत्थर उठा पाते थे परन्तु अब्दुल समद के काम करने का ढंग यह था कि पान की पीक ज़ोर से सामने की नाली में फेंककर, एक मोटी-सी गाली देकर वह एक साथ दो पत्थर उठा लेता और उन्हें किसी प्रिय वस्तु की तरह छाती से लगाये मैनेजर की मेज़ के पास से गुज़र कर, मुस्कराकर, एक आँख मींचकर, मन-ही-मन मैनेजर को एक मोटी-सी गाली देकर दोनों पत्थर मशीनों पर जमाने के लिए चला जाता और हँसकर मशीनमैन से कहता 'लो बेटा भीके! अब फलफ़ी जमाओ।' मशीन चलाने को वह फलफ़ी जमाना कहता था। वास्तव में उसकी एक अपनी ही भाषा थी जिसमें वह जीवन की महत्त्वपूर्ण बातें किया करता था। जब मालिक प्रेस में आता तो वह चुपके-चुपके मज़दूरों से कहता—शेर आया, शेर आया, दौड़ना। जब मालिक न होता और मैनेजर ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगता तो वह कहता—काम करो, काम करो सुअर की औलाद! देखते नहीं हो गीदड़ की बीवी रो रही है। जब वेतन पाने का दिन आता तो कहता—आज बेचारे का चट्टम बजता होगा। यह चट्टम बजना किस भाषा का शब्द था? कहाँ से आया था? उसने कहाँ से सीखा था? इस बात को कोई नहीं जानता। यह अब्दुल समद की भाषा थी। वह इसका मालिक था और उसे जिस प्रकार चाहता इस्तेमाल करता था। उसे कौन रोक सकता था? भाषा के सम्बन्ध में उसकी सबसे अधिक विद्या गालियों की थी। मैंने आज तक ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो अब्दुल समद से अच्छी गाली दे सकता हो। 'तेरी माँ के दूध में हुकम का इक्का।' ऐसी गाली कोई कवि ही दे सकता है, और गालियों के सम्बन्ध में अब्दुल समद एक कवि था, कलाकार था। जब वह गाली देता तो उसके स्वर में ऐसी व्याख्या और वर्णन में ऐसी गति होती कि मुझे भारत के उच्चकोटि के राज-

नीतिज्ञ याद आ जाते, जो प्राय: बातें अधिक करते हैं और काम कम। परन्तु अब्दुल समद में यह एक विशेष बात थी कि वह यदि बातें बहुत करता था तो काम भी बहुत अच्छा करता था। प्रेस के मैनेजर को वह अपनी बदज़बानी के कारण नापसन्द था, परन्तु चूँकि वह काम बहुत ही अच्छा करता था इसलिए वह उसे प्रेस से निकालना न चाहता था। यह एक विचित्र बात है और शायद आपने भी कभी देखा हो कि जितने गुण्डे होते हैं काम करने में एक होते हैं। सबसे अच्छे मज़दूर भी गुण्डे होते हैं। कितनी विचित्र बात है! है न?

अब्दुल समद एक अच्छा मज़दूर था और यदि उसमें बातें बनाने, गाली बकने और बिना कारण लोगों पर हँसने की आदत न होती तो वह एक अच्छा आदमी होता। हाँ, वह हर समय पान खाता रहता था जिससे उसके बड़े-बड़े दाँत और भी बदसूरत मालूम होते थे। गाली बकने में उसे वह कमाल प्राप्त था कि बड़े-बड़े लेखकों को आयु-भर के परिश्रम के बाद भी ऐसा लिखने का ढंग नहीं आ सकता और हँसी, उसकी हँसी सबसे बड़ी चीज़ थी। पाटदार और गूँजदार हँसी जो प्रेस की अंधकारमय इमारत और विशेषकर जिस कमरे में वह काम करता था, उसके लिए सर्वथा अनुचित थी। यह हँसी याद दिलाती थी उन पर्वतों की जहाँ सनोवर के जंगल खड़े हैं। विस्तृत मैदानों की जहाँ मीलों तक गेहूँ के खेत खड़े हैं, तारों भरी रात की, जब सब सो जाते हैं और रात की रानी इस अन्तरिक्ष से उस अन्तरिक्ष तक अपने केश फैलाये सूरज की किरणों की प्रतीक्षा करती है। यह हँसी जो मानो समुद्र की छाती चीर कर निकली थी और सारी धरती पर फैलती चली जा रही थी, मानव की नहीं किसी देव की हँसी मालूम होती थी। कर्कश, बुरी, गंदी, उभरी हुई, बढ़ती हुई यह प्रेस की सीमित, अन्धकारमय चारदीवारी के लिए सर्वथा अनुचित थी। इस पर भी अब्दुल समद प्रायः हँसता रहता था। गाली बकता रहता था

और मैनेजर के सामने लिथो के पत्थर उठाये अकड़ता चला जाता था—गुण्डा !

मैंने जब पहली बार उसे फाइन आर्ट प्रेस में देखा तो उसके प्रति अत्यन्त घृणा का भाव मेरे मन में उत्पन्न हुआ। जे० जे० अस्पताल के स्टाफ़ के लोग नृत्य की एक महफ़िल जमाना चाहते थे और मैं उस कन्सर्ट का प्रोग्राम प्रकाशित करवाने के लिए प्रेस में आया था। यहाँ मैंने अब्दुल समद को पहली बार देखा। आप बड़े ठुस्से से कमर पर हाथ रखे फ़र्मा रहे थे—"वह लिथो का पत्थर मुझसे टूट गया, मैनेजर साहब !"

"कैसे टूट गया ?"

"यह कैसे बताऊँ ? बस हाथ से छूट गया और दो टुकड़े हो गये। देखिये इस साले पत्थर को आज ही टूटना था। दो साल हो गये मुझे इस हरामी प्रेस में काम करते हुए। देखिये कभी ऐसा नहीं हुआ।" यह कहकर आपने सिर खुजाया और सिर से एक जूँ निकाल कर उसे अपने नाखूनों की चक्की में पीसते हुए बोले—"हत्तेरी जूँ के मुँह में सूअर के कबाब।"

मैनेजर बोला—"सीधी तरह बात करो।"

"सीधी तरह तो कह रहा हूँ जनाब मनीजर साहब, लिथो का पत्थर हमसे टूट गया। माफ़ी चाहिये।" यह कहकर वह हँसने लगा, जैसे माफ़ी माँगना उसे विचित्र-सा लग रहा हो। उसके दाँत और उसके मसूड़े बल्कि उसका कण्ठ और तालू तक मुझे नज़र आ रहे थे। मैं ज़रा परे हट गया क्योंकि उसके शरीर से एक विचित्र प्रकार की बू आ रही थी। हर गुण्डे के शरीर से बू आती है—धरती की बू, पसीने की बू और प्याज़ की बू और यद्यपि उसका शरीर बदबूदार था, परन्तु उसका दिल बदबूदार नहीं था। उसकी छोटी-छोटी काली, चंचल आँखें जो भवों के नीचे चमकती थीं उनमें कोई बदबू नहीं थी। दस तारीख़ को जब उसे वेतन मिलता तो वह मैनेजर साहब की ओर

कृपालुता-भरी नज़रों से देखता। ऐसी नज़रों से जिनमें दयालुता के अतिरिक्त आश्चर्य भी होता था और एक ऐसा भाव जैसे वह नज़रें कह रही हों,—तू मैनेजर नहीं है, तू मेरा भाई है। हम दोनों इन्सा हैं। इस भाव में भी कोई बदबू नहीं थी, और उसकी मुस्कराहट,गंदगी मुस्कराहट जिसमें प्रेम का पेण्ट और मशीनों का तेल घुला हुआ था उसमें भी कोई बदबू नहीं थी, परन्तु उसका शरीर बदबूदार था। उसके मसूड़े गंदे थे। उसकी बाहों के पट्टे फूले हुए थे और वह गाली बकता था और हर समय लड़ाई के लिए तैयार रहता था। वह गुण्डा था, गुण्डा। और जब मैनेजर ने उसे इस प्रकार हँस-हँसकर क्षमा माँगते हुए देखा और वह भी एक बाहर के आदमी के सामने तो उसके मन में क्रोध का एक तूफ़ान उमड़ पड़ा और उसने हाथ में लकड़ी का रूल लेकर ज़ोर से मेज़ पर मारा और अब्दुल समद को ऊँची आवाज़ में गाली देकर कहा कि वह कभी उसे क्षमा नहीं करेगा। लिथो का पत्थर बहुत महँगा है। तुम्हें मालूम नहीं बवेरिया से आता है जो जर्मनी में है। तुम्हें मालूम नहीं, आजकल बड़ी मुश्किल से मिलता है क्योंकि जर्मनी युद्ध हार गया है। तुम्हें मालूम नहीं, आज-कल पत्थर बड़ी मुश्किल से मिलते हैं।

अब्दुल समद ने उत्तर दिया—"मुझे सब मालूम है। पत्थर तो हिन्दुस्तान में भी बहुत मिलते हैं। इतने कि एक पूरी फ़ौज को पत्थर मार-मारकर हिन्दुस्तान से बाहर निकाला जा सकता है। पत्थर तो मिलता है मनीजर साहब, लेकिन रोटी नहीं मिलती। गाली के बिना, बेइज़्ज़ती के बिना मनीजर साहब! और यह तो आप जानते ही हैं कि गाली बकने में आप मेरा मुकाबला नहीं कर सकते—और यह कहकर अब्दुल समद ने जो मैनेजर की माँ के दूध में हुकम का इक्का फेरना शुरू किया तो सारे प्रेसवाले उसके गिर्द एकत्रित हो गये। मैनेजर ने बड़ी मुश्किल से जान छुड़ाई। अब्दुल समद ने कहा—"धर रखो अपने पत्थर। अब्दुल समद अब्दुल समद है। उसका चटम बरता

नहीं हो सकता। पत्थर टूट गया तो हम क्या करें। अपने चट्टम चूतड़ काट के रख दें प्रेस में, वाह मनीजर साहब! फिर ऊपर से गाली देते हो। हम काम नहीं करेंगे। कभी काम नहीं करेंगे इस साले प्रेस में। हम अभी चले जाते हैं। अभी इसी वक्त।" अब्दुल समद देर तक इसी तरह बकता-झकता रहा; परन्तु प्रेस छोड़कर गया नहीं। इस मामले में उसकी नीति अंग्रेजों से मिलती-जुलती थी जो सदैव भारत को छोड़ जाने की धमकी देते रहते थे, परन्तु जाते नहीं थे कम्बख्त। खैर, वह स्वयं नहीं गया तो दूसरे दिन मैनेजर ने प्रेस के मालिक से कह-सुनकर उसे वहाँ से निकलवा दिया। यह दंगे से दो दिन पहले की घटना है। मैंने अगले दिन अब्दुल समद को देखा कि सड़कों पर और भिंडी बाज़ार के भिन्न-भिन्न रास्तों पर अन्य गुण्डों के साथ मिलकर शोर-बावेला कर रहा था और हड़ताल करवा रहा था। एक जगह मिस्टर चुन्दरीगर, जो मुसलमानों के बहुत बड़े नेता हैं, भाषण दे रहे थे—हमें इस हड़ताल में, इस दंगे में, इस झगड़े में कोई भाग नहीं लेना चाहिए। यह सब कांग्रेस की शरारत है—परन्तु उस समय भी अब्दुल समद और उसके साथी गुण्डों ने शोर मचाकर उस शांति-प्रिय नेता की एक न चलने दी और 'जयहिन्द' और 'हिन्दुस्तानी जहाज़ी हड़ताल ज़िन्दाबाद!' के नारे लगाकर उस नेता को जलसे से बाहर निकाल दिया। और फिर मैंने सुना कि इन लोगों ने हड़ताल की, तथा ट्रामें और ट्राम के शेड जला दिये। और उन सब कामों में अब्दुल समद भी शामिल था, परन्तु इन बातों का मुझे पीछे पता चला। चुन्दरीगर की मीटिंग के बाद मैंने अब्दुल समद को जे० जे० अस्पताल में देखा। गोली उसकी पीठ में कमर के पास लगी थी और पेट फाड़कर बाहर हो गई थी। कमर के पास एक छोटा-सा छिद्र था जहाँ गोली भीतर दाखिल हुई थी और दूसरी ओर पेट में एक बहुत बड़ा घाव था जो हजारों छर्रों से बना था। यह कारतूस डम-डम वाली गोलीवाला कारतूस नहीं था जो पिछले विद्रोह में इस्तेमाल हुआ था। यह एक नया कारतूस था। नया

और खतरनाक जो शरीर के भीतर जाकर फैल जाता था और सैकड़ों छोटे-छोटे घाव उत्पन्न कर सकता था। मारने को तो आदमी को एक साधारण-से कारतूस से मारा जा सकता है परन्तु गुण्डों के लिए इस प्रकार का कारतूस ज़रा उचित रहता है। हमारे यहाँ ऐसे कारतूस सुअरों के शिकार के लिए इस्तेमाल होते हैं। खैर, गुण्डे तो सुअरों से कहीं बुरे होते हैं। अच्छा ही हुआ कि अब्दुल समद मारा गया।

अब्दुल समद मर गया और उसका शव मेरे सामने पड़ा था। आयु चौबीस वर्ष, जात राजपूत, धर्म मुसलमान, अविवाहित, आँखों की चमक मुर्दा, ओठों की हँसी मुर्दा, जीवन-दायिनी गाली मुर्दा। हर चीज़ का गला घोंट दिया गया था और वह मेरे सामने हाथ फैलाये, मुँह खोले मृतक पड़ा था। एक अन्धकारमय भविष्य, एक मौन गाली, और उसकी माँ अपनी छाती कूट रही थी और बैन कर रही थी और अस्पताल के बाहर खेमे में बैठे हुए सिपाहियों की ओर संकेत करके कह रही थी—"मेरे बेटे ने इन ज़ालिमों का क्या बिगाड़ा था? मेरा बेटा क्यों मर गया? क्यों गोली लगी? उसने किसी का क्या बिगाड़ा था? वह तो गली में भागती हुई एक छोटी-सी लड़की, एंग्लो-इण्डियन लड़की को बचाने के लिए बाहर निकला था और किसीने उसकी पीठ में गोली मार दी और लड़की बच गई। लेकिन मेरा जवान बेटा! डाक्टर! मेरा बेटा इस दुनिया में नहीं है। वह क्यों मारा गया? डाक्टर, खुदा के लिए बताओ कि वह क्यों मारा गया?"

"इसलिए कि वह एक गुण्डा था।" मैंने धीरे से कहा और उसका मुँह कपड़े से ढक दिया और दूसरे शव की ओर देखने लगा।

दूसरे गुण्डे से मेरी भेंट एक बनिये के घर पर हुई। सैंढर्स्ट रोड जिसे गुण्डे 'संडास रोड' कहते हैं, बड़े-बड़े बनियों की रहने की जगह है। यहीं पद्मसी सेठ भी रहते हैं। पद्मसी सेठ जे० जे० अस्पताल के

डाक्टरों में बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि आप सौ रुपये पर एक सौ बीस रुपये सूद लेते हैं और सारा मामला बिल्कुल चुपचाप निपटाते हैं। पदमसी सेठ का चेहरा बच्चों की तरह भोला नज़र आता है। मुस्कराहट घी में चुपड़ी हुई मालूम होती है और बातचीत के ढंग में राशन के बावजूद इतनी चीनी घुली होती है कि उस पर चोरबाज़ारी का सन्देह होता है। पदमसी सेठ मेरे बहुत अच्छे मित्रों में से हैं। इस-लिए कि मुझे ऋण की सदैव आवश्यकता रहती है और जो मित्र मुझे रुपया उधार न दे उसे मैं कम ही मुँह लगाता हूँ, और फिर पदमसी सेठ कुछ अधिक सूद नहीं लगाते। एक सौ पर केवल एक सौ बीस रुपये। और वह भी बिना ज़मानत के। अब बताइये,इससे अच्छा सौदा भारत से बाहर कहाँ हो सकता है? आज भी जब मैं गुण्डों से बचता-बचाता सैंढर्स्ट रोड पर पदमसी सेठ के मकान पर पहुँचा तो उन्होंने मेरी बड़ी आवभगत की। वह मुझे कभी नहीं टालते, सदैव रुपया दे देते हैं। यह तो उन्हें मालूम है कि मैं जे० जे० अस्पताल में डाक्टर हूँ और मुझे रुपये की आवश्यकता रहती है और मैं रुपया सूद सहित चुका भी देता हूँ। उन्हें मेरे प्रेम का पूरा हाल मालूम है। वह उस नर्स को भी जानते हैं जो इतनी सुन्दर और महँगी है कि उसके लिए एक कुँवारे नवजवान डाक्टर को एक सौ बीस रुपया प्रतिशत सूद देना पड़ता है। भारत में एक तो प्रेम बहुत महँगा है और फिर नियम-विरुद्ध। समाज, नीति और राज्य ने प्रेम को कानून का दुश्मन सिद्ध कर रखा है। आप किसी मनुष्य को कत्ल कर सकते हैं परन्तु उससे प्रेम नहीं कर सकते। यदि आप किसी लड़की से कहना चाहें—मुझे तुमसे प्रेम है। तो वह तुरन्त उत्तर देती है—क्यों, क्या तुम्हारे घर में माँ-बहन नहीं हैं। मानो इस देश में प्रेम केवल माँ और बहन तक ही सीमित है। इसके बाद भी यदि कोई प्रेम करने का साहस करे तो जूती खाता है, पिटता है या फिर गोली का शिकार बन जाता है। इसलिए कि भारत प्रेम करने की नहीं, घृणा करने की जगह है। यहाँ

मनुष्य मनुष्य से प्रेम नहीं घृणा करता है। लोग राज्य से, राज्य लोगों से, माँ-बाप बेटों से, बेटे माँ-बाप से घृणा करते हैं। घर में, बाज़ार में, कारख़ानों में, दफ़्तरों में घृणा का राज्य है। कांग्रेसी, लीगी, सोशलिस्ट एक-दूसरे को काटने दौड़ते हैं, उन्हें जितनी घृणा एक-दूसरे से है उतनी विदेशी सरकार से नहीं जिसके ये सब दास हैं। भारत घृणा की एक विस्तृत मरुभूमि है जिसमें कहीं-कहीं प्रेम की फुलवाड़ियाँ नज़र आती हैं। और ये फुलवाड़ियाँ नर्सों, देहाती लड़कियों और फ़िल्म स्टारों और अहिंसा के समर्थकों ने उगायी हैं। न जाने क्यों, चारों ओर घृणा की रेत है। शायद इस देश का वायुमण्डल ही यही है। बेचारे पदमसी सेठ भी इसी वायुमण्डल में श्वास लेते हैं इसलिए हरेक आदमी से घृणा करते हैं। -यदि इस घृणा में कोई शामिल नहीं है तो वह उनकी छोटी बेटी—शांता है। शांता एक पतली-दुबली, नौ वर्ष की गुजराती लड़की है जिसे भगवान् ने न सुन्दरता दी है न विटामन। पतली-पतली टाँगें, मैले फ्राक से बाहर निकली हुई पतली-पतली बाहें, सूखा-सूखा-सा मुँह जैसे प्याास कभी बुझी ही नहीं। हर समय चिल्लाती रहती है। और मुँह में मिठाई ठूँसती रहती है। ऐसी फूहड़, बदसूरत और बदमज़ाक लड़की है कि वाह, वाह! देखकर ढारस बँधती है। मुझे एक तो बच्चों से वैसे ही घृणा है। कम्बख्त जब देखो यों ही बिना सोचे-समझे चिल्लाते रहते हैं। कभी कुर्सी पकड़कर हिला रहे हैं तो कभी आपका कोट खींच रहे हैं। कभी थर्मामीटर पर हाथ मारते हैं तो कभी दीवार फाँदने की कोशिश करते हैं और फिर ऐसी बच्ची जो पल-भर के लिए भी चुप न होती हो, जिसका स्वर भी तेज और कर्कश हो और जिसके ओठों से हर समय जलेबी की राल बहती हो, और जिसका बाप मुझसे एक सौ पर एक सौ बीस रुपये सूद लेता हो। आप उस लड़की से मेरे प्रेम और मेरी दया का अनुमान लगा सकते हैं। खैर, उस दिन जब मैं वहाँ पहुँचा तो शान्ता कमरे में मौजूद थी और इधर-से-उधर और इस कमरे से उस

कमरे में उछल रही थी और चिल्ला रही थी और जलेबियाँ खा रही थी। पद्मसी सेठ ने उसे डाँटा और कहा—"दूसरे कमरे में चली जा, देखती नहीं डाक्टर साहब पधारे हैं।" तो शान्ता बसूरती हुई और मन-ही-मन मुझे गालियाँ देती हुई और शिकायती नज़रों से घूरती हुई कमरे से बाहर निकल गई। बाप ने उसे जाते देखकर फिर कहा—"और हाँ, देख बाहर न जाना बेटा, बाहर दंगा है" फिर उन्होंने बही खोली और रेशम के-से कोमल स्वर में बोले—"आपको कितने रुपये चाहिए डाक्टर साहब?" मैंने कहा—"आज तो मैं अपनी आखिरी क़िस्त अदा करने आया हूँ। अभी मुझे रुपये नहीं चाहिए, क्योंकि नर्स से मेरा झगड़ा हो गया है, इसलिए मेरा प्रेम समाप्त समझिये।" वह हँसे—"तो रसीद काट दूँ?" मैंने कहा—"हाँ लाइये, मैं भी हस्ताक्षर किये देता हूँ।" अतएव रसीद काट दी गई और हस्ताक्षर हो गये और स्टाम्प वापस मिल गया और फिर मैं सिग्रेट और वे बीड़ी पीने लगे और फिर संसार-भर की बातें होने लगीं। रुई का भाव मंदा है, सोने-चाँदी का धंधा है और स्टाक एक्सचेंज गंदा है और गले में अंग्रेजों का फंदा है और हम तो डाक्टर साहब, राम आपका भला करे बेतरह फँसे हैं। यह स्टर्लिंग बैलेन्स...। मैंने कहा, जी हाँ, मगर अगर मामला स्टर्लिंग बैलेंस तक ही रहता तो भी गनीमत था लेकिन सेठजी स्टर्लिंग बैलेंस का उन्होंने एक और भाग निकाला है उसे केराटिड आर्टरी कहते हैं।"

"केराटिड आर्टरी क्या है?"

"केराटिड आर्टरी के साथ एंटी-फी-बेन हाइपो का जर्मनी साइकल लगाकर साथ में उसको ऐण्टी-सेप्टिक भी कर दिया है। सेठ साहब, बाप रे।"

सेठ साहब चौंके, "तब तो मामला बहुत टेढ़ा है।"

मैंने कहा, "जी हाँ, अँग्रेजी अख़बार में सब आया है, आपने पढ़ा नहीं?"

सेठ साहब बोले—"जी नहीं, मैं तो जन्मभूमि पढ़ता हूँ। यह अच्छा ही हुआ कि आपने बता दिया। एक तो दंगा हो रहा है, जहाज़ियों ने हड़ताल कर रखी है। गुण्डागर्दी हो रही है और इधर से यह, एँटी-सेपटिक आपने बता दिया। मैंने तो साहब! चोरबाज़ार में जितना रुपया लगा रक्खा है उसे आज ही निकलवाता हूँ।"

इतना कहकर सेठ साहब ने करवट बदली तो नीचे से कारतूस दगने की बार-बार आवाज़ आई। बोले, "देखा आपने, हड़ताल करने से यह होता है। ये गुण्डे बदमाश अमीर लोगों को लूटना चाहते हैं। डाक्टरजी, कलजुग आ गया है। ये गुण्डे बदमाश अमीर लोगों को लूटना चाहते हैं। कारखाने जलाना चाहते हैं। शहर को तबाह करना चाहते हैं। डाक्टर जी, कलजुग आ गया है, कलजुग। धर्म का बीज नहीं इस धरती पर।"

मैंने कहा—"आप बिल्कुल सच कहते हैं।"

इतने में फिर गोली चलने की आवाज़ आई और गली से रोने-चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं और बच्चों का चीत्कार। हम लपक कर खिड़की की ओर गये और नीचे झाँककर देखा तो एकाएक सेठ ने चीख़ मारी और फिर धड़ाधड़ सीढ़ियाँ उतरने लगे। मैं उनके पीछे आ रहा था। कोई विशेष बात न हुई थी। हुआ यह था कि गली के बच्चे पुलिसवालों से आँख-मिचौली खेलते थे। बच्चे छिपकर गली के दूसरे कोने में चले जाते और वहाँ से पुलिसवालों पर 'जयहिन्द' के नारे कसते और उन पर छोटे-छोटे कंकर फेंकते और जब पुलिस-वाले उन्हें डराते और उनका पीछा करते तो बच्चे भागकर, हँसते-खेलते, खुशी से तालियाँ बजाते हुए गली के दूसरे किनारे पर जा खड़े होते और वहाँ भी पुलिसवालों से यही खेल खेलते। बड़ा दिलचस्प खेल था और बच्चे दिन-भर इसी खेल में लगे रहते थे। कोई अन्य देश होता तो बच्चों की इस शरारत को खेल समझा जाता। अधिक-से-अधिक यह होता कि पुलिस का कोई सिपाही

और हिन्दू-मुसलमान एक हैं। वाहगुरु की कृपा से चिंता न करना। तेरा बेटा ज़रूर नौकरी प्राप्त करेगा। तुझे रुपये भेजेगा। अपनी अछूड़ी बहन का ब्याह करेगा और उस साले, सुअर के बच्चे बनिये का सूद भी देगा। मेरी माँजी मुझे क्षमा करना। गुलालचन्द बनिये का नाम लेते ही तेरे बेटे को क्रोध आ जाता है। इधर अभी मैं कृपालसिंह ड्राइवर की लारी में सोता हूँ और रोज़ सुबह उसकी लारी धोता हूँ। जगजीतसिंह को बोलना कि वह बहन बन्तो का ब्याह उस भैन-यावे मनोहरसिंह से न करे, नहीं तो उसको जान से मार दूँगा। जब मुझे नौकरी मिलेगी तो एकदम आकर खुद बन्तो को भगा ले जाऊँगा। मेरी माँजी, वह तुम्हारी बहू—अच्छी बहू बनकर सेवा करेगी और........"

इससे आगे पत्र कुछ नहीं कहता। हाँ, जो लोग इस सिक्ख नौजवान की लाश को अस्पताल में लाये थे वे कहते थे कि इस नौजवान ने बेरीकेड पर अपनी जान दी है। वह ग्रांटरोडवाले जलूस के आगे-आगे 'पगड़ी सँभाल जट्टाँ' वाला गीत गा रहा था और आगे बढ़ रहा था और जब उसे गोली लगी उस समय भी वह गीत गा रहा था। उसके हाथ में कांग्रेस और लीग दोनों के झंडे थे। दायें-बायें इन्हें लहराता हुआ वह आगे बढ़ता गया। गोलियों की वर्षा हो रही थी और वह उस लहू की वर्षा में बढ़ता हुआ आगे जा रहा था और जब गोलियों से छलनी होकर गिर पड़ा तो उसने कहा "यह मेरी कमीज़ और शलवार किसी ज़रूरतमंद को दे देना और मुझे सिक्ख धर्मानुसार जला देना।" इतना कहकर उसने जान दे दी और वह वहीं ट्राम लाइन पर मर गया और दोनों झंडे उसके रक्त से सुर्ख हो गये। लीग का हरा झंडा और कांग्रेस का हरा, श्वेत और लाल झंडा—दोनों उसके रक्त से ऐसे सुर्ख हो गये कि कोई यह न कह सकता था कि कौन झंडा किसका है और वह जो हिन्दू था न मुसलमान, उसने अपना लहू देकर दोनों झंडों को एक कर दिया था। वह तो एक किसान था।

गाँव से आया था। उजड्ड और अनपढ़ था—गुण्डा।

मैंने उसकी शलवार और कमीज़ अपने अस्पताल के हरिजन धोबी को दे दी। धोबी ने वह शलवार पहन रखी है। नीली कमीज़ उसकी पत्नी पहनना चाहती है। उसने उसे फिर से सिया है, जोड़ा है। दूसरे कपड़े के टुकड़े लगाये हैं और अब यह कमीज़ धोबी के घर के बाहर जंगले की सलाख पर पड़ी झूल रही है.......यह अजीब कमीज़ है जो पंजाब से आई है, जिसे किसी किसान बच्चे की माँ ने अपने काँपते हुए हाथों से सिया है। लोग बड़े-बड़े कवियों, बड़े-बड़े नेताओं को नमस्कार करते हैं, मैं तुझे नमस्कार करता हूँ। ऐ निर्धन जर्जर कमीज़, भूली हुई, बिसरी हुई गालियाँ खाती हुई कमीज़, मैं तुझे हज़ार बार नमस्कार करता हूँ। तूने एक भोले जाट की मज़बूत छाती पर गोली खाई है। तूने उससे प्यार किया है। उसका साथ दिया है। जीवन में और मृत्यु में और उस समय जब इस देश के बड़े-बड़े चाहनेवाले इसका साथ छोड़ चुके थे। तुझे हज़ार बार नमस्कार। ऐ मेरे देश की विस्तृत निर्धनता की तरह फटी-पुरानी कमीज़, तूने अपनी गोद में एक भोले-भाले किसान के दिल की धड़कनें छिपाई हैं और अब तू एक हरिजन माँ के दूध की लाज और उसके नन्हें बेटे की जान की रक्षा करेगी। इन्हें भी अपने जीवन का सादापन प्रदान कर! इन्हें भी अपनी धरती का प्यार दे। अपनी आत्मा की वह सच्ची भावना दे जिसे पाकर हम सब बेरीकेड पर आकर मिल जायँ। इसी प्रकार हवा में लहराती रह। तू सुन्दरता, सत्यता और उपकार की मूर्ति है। तू उस आनेवाले तूफ़ान का संकेत है जब जंजीरें टूट जाती हैं और मनुष्य प्रेम करने लगते हैं।

इस प्रकार ये तीनों गुण्डे मर गये, यह सब-कुछ दंगे के दिनों में हुआ; परन्तु अब वह दंगा समाप्त हो चुका है। अब चारों ओर शांति-ही-शांति है। गुण्डे मर चुके हैं या गिरफ्तार करके जेलों में डाल दिये गये हैं और अब शहर में किसी प्रकार का ख़तरा नहीं है।

अस्पताल के वार्ड घायलों और लाशों से पटे पड़े हैं। अब चैन-ही-चैन है। अब काली रात है। चुप्पी है। मैं अस्पताल से थका-माँदा आ रहा हूँ और नहा-धोकर खाना, खाकर बिस्तर के पास लैम्प जलाये दिवान पर बैठा हूँ और समाचार-पत्र पढ़ रहा हूँ। समाचार-पत्र में लिखा है—मिस्टर और मिसेज फंसी और मिस्टर बन्दरीगर और मिस्टर स्तावन और अन्य सम्मानित नागरिक एक अंग्रेजी जहाज़ पर निमंत्रित किये गये हैं जिसने तट पर इसलिए लंगर डाला है ताकि जहाज़ी हड़तालियों के विद्रोह की रोक-थाम कर सके। मिस्टर बन्दरीगर बरात के दूल्हा मालूम होते हैं। मिस्टर फंसी ने एक हल्के रंग की नीली कमीज़ पहन रखी है और मिसेज़ फंसी की साड़ी का रंग पिघले हुए याकूत का-सा है। यहाँ शांति और कानून और उन्नति और वैधानिक परिवर्त्तन के जाम पिये जा रहे हैं। मैं समाचार-पत्र फेंक देता हूँ और फिर रैक से एक पुस्तक निकाल कर पढ़ता हूँ। मानव का इतिहास-लेखक एच० जी० वेल्स और मेरी आँखों के सामने बेरीकेड नाचने लगते हैं। मानव ने हज़ारों वर्ष पूर्व भी ये बेरीकेड बनाये थे अत्याचार तथा मूर्खता तथा पाप को जीतने के लिए। बेरीकेड मेरी नज़रों के आगे नाच रहे हैं। बुद्ध, महम्मद, मसीह.......फिर प्रकाश की मशाल का कोण बदल जाता है और चार्ल्स प्रथम का सिर नज़र आता है फाँसी पर लटकता हुआ। "पैरिस में गलोतीन....कम्यून ...आक्तूबर मैडर्ड...." आज भी बेरीकेड खड़े हो रहे हैं ?

मोराको में...अलजीरिया में....मिश्र में....भारत में....इन्डोचाइना में....इन्डोनेशिया में...यह तूफ़ान है तूफान, इसे कौन रोकेगा....यह क्रांति है क्रांति, इसे कौन छेड़ेगा ? यह कमीज़ है कमीज़, आदमी की कमीज़। हवा में लहराती हुई....इसे गोलियों से छलनी कर दो। इसके टुकड़े-टुकड़े कर डालो। इसे बमों और टैंकों से उड़ा दो, यह फिर साबत और सालम हो जायगी। यह कमीज़ मर नहीं सकती। यह मानव की आत्मा है।

बुत जागते हैं

यह कहानी जो मैं आज आपको सुना रहा हूँ, कल तक घटित नहीं हुई थी। कल रात के दो बजे तक इस कहानी के कार्यान्वित होने की कोई संभावना नहीं थी। कल रात को दो बजे तक जब मैं सोचता-सोचता थक गया, और वह कहानी न आई तो मैं इसकी खोज में घूमता-घूमता चौपाटी की तरफ निकल गया। यहाँ इस समय एक अजीब सन्नाटा था, समुद्र का शोर बहुत धीमा था। और वह कहीं दूर क्षितिज के सीने से चिपटकर मध्यम-मध्यम सुरों में बिलख-बिलख कर रो रहा था। और किनारे कुछ रेत भी लाखों अनजाने कदमों के घाव अपने सीने में लिये हुए धीरे-धीरे कराह रही थी। सारे वातावरण में एक अजीब कराह, थकन की छाया फैली हुई थी। और मैं इस अजीब-से वातावरण के कष्टदायक असर को अनुभव करता हुआ आगे बढ़ता गया। एकाएक मेरे कानों में आवाज़ आई—

"तिलक भगवान् !"

मैंने घबराकर देखा—सामने तिलक महाराज का बुत था, जो एक अजीब शान और अभिमान से, सिर पर धूल का बोझ उठाए, वातावरण को देख रहा था। उसके कदमों में मैंने एक परछाई-सी देखी। उसका चेहरा मैं साफ-साफ नहीं देख सका, क्योंकि उसकी पीठ मेरी तरफ थी। हां ! इतना ज़रूर देखा, कि अब अधेड़ उम्र का, नाटे कद का, गेहुँए

रंग का मराठा है। उसकी कमीज और धोती जगह-जगह से फटी हुई थी। उसके पाँव नंगे थे, और टाँगों पर गहरे घावों के निशान थे। उसे देखकर मेरे कदम वहीं रुक गये और मैं उसकी बातें सुनने के लिए वहीं रेत पर लेट गया ताकि वह भी समझे कि यह आदमी रेत पर सो रहा है, मेरी बातें नहीं सुन रहा है।

उस आदमी ने फिर कहा—"तिलक भगवान् !"

तिलक भगवान् के बुत ने कहा—"कहो, क्या कहते हो ?"

आपको शायद आश्चर्य होगा कि कहीं पत्थर का बुत भी बोल सकता है। शायद आपको मालूम नहीं है कि हर अमावस को, जब चारों ओर घोर अँधेरा होता है, सुनसान आधी रात का समय होता है; उस समय बुत जागते हैं, और जागते ही नहीं बातें भी कर सकते हैं। अगर कोई उन्हें बुलाये और उनसे कुछ बातें पूछे तो उसका जवाब भी देते हैं। आपको शायद यह बात मालूम नहीं, मगर मुझे बहुत दिन से मालूम थी। लेकिन मैंने कभी बात नहीं की। पहले तो दुनिया के झंझटों से इतनी फुर्सत ही कहाँ मिलती है कि आदमी रात के दो बजे उनसे बात करने जाय। फिर बम्बई में जितने बुत हैं, इतने बड़े-बड़े लोगों के हैं कि आदमी सोचता है कि इन इज़्ज़तदार हितुओं से बात किस तरह करे ? न जाने कौन-सी बात बुरी लग जाय। फिर आज़ादी से पहले यह भी भय था कि खुफ़िया पुलिस कहीं इस जुर्म में न गिरफ़्तार कर ले, कि यह आदमी बाल गंगाधर तिलक के बुत से बात कर रहा था और न जाने ब्रिटिश हुकूमत के ख़िलाफ़ क्या-क्या साज़िशें रच रहा था। और आजकल यह डर होता है कि पुलिस इस-लिए न पकड़ ले कि देखो यह आदमी अपनी ही हुकूमत के ख़िलाफ़, अपने देश के नेता बाल गंगाधर तिलक से शिकायत कर रहा था। इन्हीं बातों को सोचकर मैंने आज तक किसी बड़े लीडर के बुत से कभी बात नहीं की हालाँकि इस दौरान में कई अँधेरी रातें आईं, और चली गईं लेकिन हम बिलकुल ख़ामोश रहे। आज अपनी ज़िन्दगी में

यह पहला मौका है कि किसी शेर मर्द को तिलक भगवान् के बुत से बातें करते देख रहा था। मैं रेत पर लेटा आगे बढ़ने लगा ताकि अच्छी तरह और इत्मीनान से उनकी बातें सुन सकूँ।

मराठा कह रहा था—"मेरा नाम उत्तमराव खांडेकर है। मैं अठारहवीं सदी की आखिर में पैदा हुआ था।"

तिलक महाराज बोले—"मैं भी इसी ज़माने में पैदा हुआ था।"

खांडेकर बोला—"मैं पूना में एक स्कूल में मास्टर था। मुझे इतिहास में बड़ी दिलचस्पी थी।"

तिलक महाराज बोले—"मुझे भी इतिहास से बड़ी दिलचस्पी रही है।"

खांडेकर बोला—"जिन दिनों आपने यह नारा उठाया कि 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है,' उन दिनों मैं स्कूल में टीचर था। मैंने अपनी सारी किताबें पढ़ीं, आपकी बहुत-सी तकरीरें सुनीं। मैं बच्चों को इतिहास पढ़ाता था। इतिहास पढ़ाते-पढ़ाते मेरे दिल में नई-नई उमंगें पैदा होने लगतीं। अजीब-अजीब-से विचार मेरे दिमाग़ में आने लगे। मैंने बच्चों को इतिहास बिल्कुल एक नए ढंग से पढ़ाना शुरू किया। और जब मैं पढ़ाते-पढ़ाते गदर पर आया तो......."

"तो क्या हुआ?" तिलक भगवान ने पूछा।

"तो मुझे स्कूल से निकाल दिया गया। अफसरों ने कहा कि गदर गदर था, आजादी का आन्दोलन नहीं था। मैं झूठा था, मैं षड्यंत्रकारी था, जो बच्चों का आचार-विचार खराब कर रहा था। और देश की सरकार के ख़िलाफ़ घृणा फैलता था। इसलिए मुझे स्कूल से बाहर निकाल दिया गया। और मेरी रोज़ी के सारे दरवाज़े बंद कर दिये गये।"

"फिर तुमने क्या किया?" तिलक भगवान ने पूछा।

"फिर मैंने रोज़गार के लिए हर वह दरवाजा खटखटाया, जहाँ से देश-भक्ति के इनाम में मुझे रोटी मिलने की आशा थी। कहीं पर कुछ

नहीं हो सका। इसमें किसी का दोष नहीं था। सरकार का रोब इस बुरी तरह बैठा हुआ था कि कोई मेरी मदद के लिए तैयार नहीं होता था। फिर मैं देश के आन्दोलनों में ज़ोर-शोर से भाग लेने लगा। और मेरी पत्नी ने लड़कियों के स्कूल में नौकरी कर ली। लेकिन जब मुझे पहली बार कैद हुई तो उसकी वह नौकरी भी छूट गई। हमारे बच्चे थे, वे भूख की भेंट चढ़ गए। मेरी पत्नी अपने मायके चली गई, जहाँ गाँव के पटेल ने उसे अपने माँ-बाप के घर से यह कहकर निकलवा दिया कि इसे अगर घर में रखोगे तो तुम पर भी आँच आयेगी। मेरी पत्नी जब घर से निकाली गई तो उसके लिए कोई रास्ता नहीं था। वह रंडी बनकर गुज़ारा कर सकती थी, मगर उसकी आत्मा ने यह सहन नहीं किया, और वह नदी में डूबकर मर गई। जब मैं जेल से छूटा तो मैं बिल्कुल आज़ाद था, अब मुझपर घर-बार का कोई बोझ न था। मैंने बड़ी लगन से काम करना शुरू कर दिया, किसानों में। और जब यह आंदोलन उठा कि लगान न दिया जाय, उस समय मैं चन्दनवाड़ी के गाँव में यही आन्दोलन चला रहा था। पहले अफसरों ने, फिर पुलिस ने, फिर फौज ने, हमसे लगान वसूल करना चाहा, लेकिन मैंने गाँववालों से लगान वसूल नहीं करने दिया, इसलिए मुझे गोली मार दी गई, और मैं मर गया। यह निशान देखिए, मेरे शरीर पर कम-से-कम बीस गोलियों के निशान हैं।"

"हमें बहुत दुख है," तिलक महाराज बोले। "क्या नाम बताया तुमने ?"

"उत्तमराव खांडेकर।"

"कभी सुना नहीं यह नाम।"

खांडेकर बोला—"मेरा नाम कोई नहीं जानता। मेरी पत्नी का नाम भी कोई नहीं जानता, जो नदी में डूब मरी थी। मेरे उन दो बच्चों के नाम भी कोई नहीं जानता जो फाके करते-करते मर गए! इतिहास में हमारा नाम कहीं नहीं है। पट्टाभि सीतारामय्या ने काँग्रेस

का जो इतिहास लिखा है उसमें भी हमारा कहीं नाम नहीं है। अब हमारा नाम कहीं नहीं है। पूने वाले, गाँववाले और सारा महाराष्ट्र मुझे भूल चुका है।

"तो अब तुम्हें क्या परेशानी है?" तिलक महाराज ने पूछा।

"परेशानी नहीं, एक चाह है। इसे पूरा करने के लिए आपके पास आया हूँ।"

तिलक महाराज बोले—"मैं क्या कर सकता हूँ? मैं तो पत्थर का बुत हूँ।"

खाँडेकर बोला—"बस मैं भी यही बनना चाहता हूँ, एक पत्थर का बुत। अपने मरने के बाद आज तक हैरान-परेशान होकर यहाँ घूमता रहा हूँ। अब चाहता हूँ कि मैं भी आपकी तरह पत्थर का बुत बन जाऊँ। जरा थोड़ा-सी जगह दे दीजिए।"

और मैंने देखा कि वह परछाईं चबूतरे पर चढ़ने लगी।

तिलक महाराज बोले—"क्या कर रहे हो?"

खाँडेकर ने कहा—"मैं भी आपके साथ खड़ा होना चाहता हूँ, मुझे थोड़ी-सी जगह चाहिए, आराम के लिए। मैं आपके कदमों में खड़ा हो जाऊँगा। मैं जिन्दगी-भर आपके कदमों पर चला हूँ। क्या मरने के बाद आत्मा का नाता समाप्त हो जाता है?"

तिलक महाराज ने कहा—"नहीं भाई, यह बात नहीं है। मगर असल में यह जगह मेरी है, यह चबूतरा मेरा है, यह बुत मेरा है।"

खाँडेकर बोला—"तो मेरी जगह कहाँ है? इतिहास में नहीं, चौपाटी के किनारे नहीं, लोगों के दिल में नहीं। तो मैं कहाँ जाऊँ?"

तिलक महाराज बोले—"म्युनिसिपल कार्पोरेशन के पास जाओ, वह लोग तुम्हारे लिए बुत बना देंगे।"

खाँडेकर बोला—"मगर वह तो आदमी हैं। और आदमी आज-कल कहाँ आत्मा की आवाज सुनते हैं?"

तिलक महाराज बोले—"तुम जाओ तो सही। और देखो, जल्दी जाओ, वह पुलिस का आदमी आ रहा है, कहीं तुमको गिरफ्तार न कर ले। और सुनो, अपना बुत किसी अच्छी जगह बनवाना। यहाँ नहीं। मेरे कदमों में रेत है तपती हुई और सिर पर आस्मान और धूप है। यहाँ धूप में सिर में दर्द होने लगता है, और सारा शरीर दुखने लगता है, और दिन-भर तमाशों का गुलगपाड़ा रहता है। और मूर्ख दही-बड़े की चाट खा-खाकर जूठे पत्ते मेरी तरफ फेंकते जाते हैं। किसी अच्छी जगह अपना बुत बनवाना।"

मगर वह परछाईं पुलिस के डर से गायब हो गई थी। मैं भी जल्दी से उठकर वहाँ से भाग आया। भागता-भागता चर्चगेट स्टेशन तक आ गया। यहाँ आकर धीरे-धीरे चलने लगा। चलते-चलते हॉकी ग्राउन्ड के पास आ निकला और यहाँ एक बड़ के तने से टेक लगाकर खड़ा हो गया। इतने में मेरे कानों ने सुना, कोई कह रहा है—

"गोखले महाराज!"

मैंने घूमकर देखा—सामने चबूतरे पर गोखले महाराज का बुत है—कोट-पतलून पहने हुए। और एक आदमी कोट-पतलून पहने हुए उसपर चढ़ने की कोशिश कर रहा है। जब वह चबूतरे पर चढ़ गया, और आगे बढ़ने लगा तो गोपालकृष्ण गोखले के बुत ने परेशान होकर कहा—

"तुम आगे बढ़े तो मैं पुलिस को बुलाऊँगा!"

"क्यों?"

"मैं राष्ट्रीय बुत हूँ। तुम मेरी बेइज्ज़ती कर रहे हो।"

"बेइज्ज़ती नहीं दोस्त," कोट-पतलून पहने हुए आदमी ने जवाब दिया—"मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

गोखले का बुत बोला—"तो ज़रा दूर रहकर तमीज़ से बात करो। कौन हो तुम?"

कोट-पतलून पहने हुए आदमी ने जवाब दिया—"मेरा नाम कर्तारसिंह सराभा है।"

गोखले ने कहा—"सिक्ख और पंजाबी! जभी इस तरह बदतमीज़ी से पेश आ रहे हो। जानते नहीं हो मैं इम्पीरियल कौंसिल का मेंबर रह चुका हूँ?"

कर्तारसिंह ने कहा—"दोस्त मुझे उस हुकूमतवालों ने फाँसी की सज़ा दी थी जिसकी कौंसिल के तुम कार्यकर्त्ता रह चुके हो।"

गोखले ने कहा—"इसमें मेरा कोई दोष नहीं। मैंने अपनी हैसियत के मुताबिक ज़िन्दगी भर देश की सेवा की है।"

कर्तारसिंह ने कहा—"कभी जेल गये हो?"

"नहीं।"

"कभी भूख-हड़ताल की है?"

"नहीं"।

"कभी जेलरों और वार्डरों से पिटे हो? इतने कि तुम्हारी पीठ घावों से छलनी हो गई हो और कोड़ों के गर्म स्पर्श ने तुम्हारे मांस का क़ीमा बना दिया हो? तुम्हारे शरीर का ज़र्रा-ज़र्रा पानी माँग रहा हो और तुम्हारी ज़बान गले से बाहर निकल पड़ती हो और तुम्हें कोई एक बूँद पीने को पानी नहीं देता हो?"

"नहीं! इस क़िस्म के पागलपन का अनुभव मुझे कभी नहीं हुआ।"

"इस अमर आनन्द का मैं उपभोग कर चुका हूँ," कर्तारसिंह बोला और उसने अपना कोट उतार फेंका, और अपनी कमीज भी। मैंने देखा कि उसकी पीठ पर से खून बह रहा है और कोड़ों के निशान अन्दर की रीढ़ की हड्डी तक चले गये हैं, और उसके गले में एक रस्सी है जिसे उसने टाई की तरह बाँध रखा है।

"यह क्या है?" गोखले महाराज ने अपनी नाक पर रूमाल रखते हुए पूछा।

"यह फाँसी की रस्सी है, जिसे मैं आज तक गले में डाले हुए हूँ।

जब इस रस्सी ने मेरा गला घोंटा था, उस समय मैं जवान था और ताकतवर था। और मैं कलकत्ता से लेकर मेरठ और अमृतसर फौजियों में घूमता था, ताकि उनको ब्रिटिश हुकूमत से बग़ावत करने के लिए तैयार किया जा सके।"

गोखले बोले—"हिंसात्मक बग़ावत मेरा उद्देश्य नहीं। मैं तो अहिंसा में विश्वास रखता हूँ।"

कर्तारसिंह ने उसकी बात अनसुनी करके कहा—"लेकिन हमारी बग़ावत सफल न हुई, हमारा आन्दोलन अच्छा नहीं था। हमें कुचल कर रख दिया गया और गोलियों की बाढ़ ने हमारी आज़ादी के ख़याल को भूँजकर रख दिया।"

गोखले बोला—"अब तुम क्या चाहते हो?"

कर्तारसिंह ने कहा—"ज़रा परे सरक जाओ, इस चबूतरे पर मुझे थोड़ी-सी जगह दे दो। इस पर मेरा भी अधिकार है। जानते हो जब पन्द्रह अगस्त को तुम्हारे गले में हार डाले गये थे मैं इस चबूतरे के पास खड़ा था। किसीने मुझे हार नहीं पहनाये, किसीने मेरी फाँसी की रस्सी की तरफ नहीं देखा, किसीने मेरी पीठ के रिसते हुए घावों को नहीं देखा। किसी ने मेरे शरीर को नहीं देखा, जो भूख को खाते-खाते भी आज़ादी के गीत गाता रहा। मेरी हिम्मत को नहीं देखा, जिसने आज़ादी की राह में अपना सब-कुछ लुटा दिया। अपनी जवानी की सारी बहारें, सारी कामनाएँ, सारी उमंगे। लोगों ने तुम्हें हार पहनाये और किसी ने मेरी तरफ एक फूल भी नहीं फेंका। दोस्त, मैंने देश की खातिर इम्पीरिल कौंसिल में भाषण नहीं दिये लेकिन अपने देश की खातिर मौत की रस्सी को अपने गले से ज़रूर बाँधा है। मैं तुम्हारी इज्ज़त करता हूँ, तुम्हारी शान की कदर करता हूँ। लेकिन अब बहुत भटक चुका, अब मैं आराम करना चाहता हूँ। पत्थर का बुत बन जाना चाहता हूँ तुम्हारी तरह। ज़रा थोड़ी-सी जगह दे दो।"

गोखले महाराज बोले—"अभी मैं मजबूर हूँ, तुम्हें जगह नहीं दे

सकता अपने पास, क्योंकि मैं तो अहिंसा में विश्वास रखता हूँ, और तुम हिंसा में! हमारे सिद्धान्त अलग-अलग हैं। और फिर तुम क्यों नहीं म्युनिसिपल कार्पोरेशन के पास प्रार्थना करते? वहाँ चले जाओ, संभव है तुम्हारा काम हो जाय। और अगर हो गया तो देखो, वहाँ कहीं आसपास में अपना बुत नहीं बनवाना। मैं इस जगह से खुद बहुत परेशान हो चुका हूँ। यह पास में बड़ का पेड़ है, यहाँ पंछी मेरे सिर पर बीट करते हैं। और यों तो लोग कभी इधर का रुख नहीं करते, हाँ, जब हॉकी-ग्राउंड में लड़कियों का मैच होता है तो उनकी नंगी टाँगों को देखने के लिए मुझे यों चारों तरफ से घेर लेते हैं कि मेरे लिए अपनी जगह पर खड़ा होना मुश्किल हो जाता है। और रात के बारह बजे, इस चबूतरे की बेंचों पर वेश्याओं और तमाश-बीनों में चूमाचाटी होती है।''

लेकिन इसके आगे गोखले महाराज कुछ कह न सके, क्योंकि पुलिस का सिपाही गश्त लगाता हुआ आ रहा था। और कर्तारसिंह सराभा उसे देखते ही भाग गया था। मैं उसके पीछे बहुत दौड़ा, बहुत भागा, मगर वह इतनी तेज़ी से आगे निकल गया कि मैं उसे पा नहीं सका। दौड़ते-दौड़ते जब मेरा दम फूल गया, तो मैं एकाएक ठिठक गया। क्या देखता हूँ कि एक सुन्दर बगीचा है, जिसमें छोटे-छोटे चबूतरों पर फरिश्तों के बुत पर फैलाए हुए खड़े हैं। और उनके बीच में एक बड़े चबूतरे पर दादाभाई नौरोजी का विशाल बुत बड़ी कृपा-दृष्टि से सारे हिन्दुस्तान को देख रहा है!

मैं देर तक हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयता की पौध लगानेवाले को देखता रहा। इतने में किसी ने कहा—"दादाभाई!"

मैंने पलट कर देखा—एक लम्बे कद का काला आदमी था। वह सफ़ेद कमीज़ और खाकी नेकर पहने हुआ था। उसकी आँखें बन्द थीं, और ओंठ भी बन्द थे। सिर्फ उसके माथे में एक सूराख था, और उसमें खून बह रहा था। फिर आवाज़ आई—"दादा भाई!"

अवश्य यह वही आदमी बोल रहा था....लेकिन न मालूम उसके ओठ न हिलते हुए भी कैसे बात कर रहे थे ?

नौरोजी बोले—"क्या बात है बेटा ?"

"दादाभाई," वह लम्बा आदमी बोला—"मैं मिल-मज़दूर हूँ ।"

दादा भाई ने बड़ी सरलता से पूछा—"यहाँ तुम किस मिल में काम करते हो ?"

"नहीं दादाभाई ! मैं अमलनेर में था, मेरा नाम पाटिल है । मेरे तीन बच्चे हैं । एक बुढ़िया माँ है, एक बूढ़ा बाप है । उन सबका खर्चा मेरे ऊपर है । और मैं यह खर्चा इस थोड़ी-सी मज़दूरी में पूरा नहीं कर सकता, मेरे मालिक !"

"तो तुम क्या चाहते हो ?" दादाभाई बोले—"तनखाह में बढ़ती ?"

"हाँ मालिक ! महँगाई बहुत है, और खर्चा अधिक है, और ज़िन्दगी मुसीबत में है ।"

"तुम मिल-मालिक से क्यों नहीं कहते ?"

"वह नहीं सुनता ।"

"तो सरकार से कहो, अपनी सरकार से कहो, अब तो अपनी सरकार है ।"

"अपनी सरकार ने भी नहीं सुनी । उन्होंने हमें गोली मार दी है, मालिक ! यह माथे पर गोली का निशान है । मैं अमलनेर का मिल-मज़दूर हूँ । मेरे तीन बच्चे हैं, एक पत्नी है, एक बूढ़ी माँ है, एक बूढ़ा बाप है, और सबका खर्चा मुझ पर है । और मुझे मार दिया गया है, और वह सबलोग भूखे हैं । मैंने हमेशा काँग्रेस को चन्दा दिया है, और आज़ादी के लिए हड़ताल भी की है । मगर अब आज़ादी आ गई है, और इसकी पहली गोली मेरे माथे पर है । मालिक !"

"तो तुम क्या चाहते हो ?"

"कुछ नहीं, मुझे अपनी छत्रछाया में थोड़ी-सी जगह दे दो । मैं

सारी दुनिया के सामने खड़ा होकर, तुम्हारे पास खड़ा होकर अपने माथे का लाल निशान दिखाना चाहता हूँ। दादाभाई, क्या मेरे माथे का खून कभी बन्द नहीं होगा ? मेरे बूढ़े बाप को कोई रोटी न देगा ? मेरी पत्नी को कोई लाज न देगा ? मेरी माँ की ममता क्या प्यासी रहेगी ? दादाभाई बोलो ! दादाभाई बोलो ! तुम तो पार्लियामेन्ट में शेर की तरह गरजते थे। अब चुप क्यों हो ?"

मेरी आँखों में आँसू आ गये, और मैं आगे कुछ न सुन सका, और वहाँ से चल दिया। और रोते-रोते ए० आई० सी० सी० के पंडाल के बाहर पहुँच गया, जहाँ महात्मा गांधी का बुत खड़ा था। ए० आई० सी० सी० की मिटिंग खत्म हो चुकी थी, और दर्शक चले गये थे। अब पंडाल तोड़ा जा रहा था, और लम्बे-लम्बे बाँस लारियों में भर कर वापस ले जाये जा रहे थे। मैं बुत के पास चला गया, और रुँधे हुए गले से बोला—

"बापू, देख तो सही तेरे राज में कितना अँधेर है ? लँगोटीवाले बापू, आ मैं तुझे दिखाऊँ कि तेरे पुजारी तेरे नाम पर क्या कर रहे हैं।"

लेकिन बुत ने कोई जवाब नहीं दिया, क्योंकि अमावस की रात समाप्त हो चुकी थी, और लाल प्रभात निकल रहा था। जब प्रकाश हो जाता है तब बुत नहीं बोलते।

मेरे पास एक मज़दूर खड़ा था। वह बोला—"इस चबूतरे से परे हट जाओ। इस बुत को उठाना है।"

"कहाँ ?" मैंने पूछा।

वह बोला—"इसे एक मिल-मालिक ने खरीद लिया है, यह बुत आज उसके घर उठ जायगा।"

भैरों का मन्दिर लिमिटेड

यह उन दिनों की बात है जब मैं परमात्मा और धर्म को मानता न था और पाँच वर्ष से बेकार था। इन पाँच वर्षों में मैंने सब पापड़ बेल लिये। पी० सी० एस० की परीक्षा दी, असफल। तहसीलदारी के मुकाबले में बैठा, असफल। नायब-तहसीलदारी के लिए कोशिश की, असफल। गिरदावरी के लिए आवेदनपत्र दिया, असफल। पटवारी बनना चाहा, असफल। सब ओर से निराश होकर मैंने दिल्ली में अपने बड़े भाई की फ़र्म का दरवाज़ा खटखटाया। वह फ़र्म उनकी अपनी तो न थी परन्तु चूँकि वह वहाँ ख़ज़ांची थे इसलिए हम सब लोग इस फ़र्म को "बड़े भाई साहब की फ़र्म" कहते थे। फ़र्म का नाम था 'मे एण्ड मे।' भाई साहब ने मेरे लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया........ असफल। फिर दूसरी फ़र्मों में कोशिश की, जान्सन एण्ड थाम्सन एण्ड को, रूलदूराम फुलदूराम घुलदूराम एण्ड को, रायसाहब, राम नवाया, रामभाया, राम सहाया एंड ब्रदर्स........असफल।

मेरे बड़े भाई दिल्ली में बीस हज़ारी में रहते थे। भैरों के मन्दिर के नीचे। भैरों का मन्दिर एक छोटी-सी पहाड़ी पर था और नीचे दिल्ली के एक सेठ ने तीन-तीन कमरों में पन्द्रह बीस क्वार्टर बनवा रखे थे, जहाँ क्लर्क आदि लोग अपने बीबी-बच्चों, मुर्गियों, बिल्लियों, कुत्तों सहित रहते थे। क्वार्टरों के बिल्कुल सामने पहाड़ी टीले पर भैरों का मन्दिर था।

दाईं ओर एक गिरजा, बाईं ओर एक मोटर-गराज और उसके निकट डाक्टर सबसुखसहाय की कोठी थी। बड़े भाई साहब की इन डाक्टर साहब से गहरी छनती थी। इन्होंने मुझे अपने यहाँ कम्पाउण्डरी का काम सीखने पर रख लिया परन्तु यह धंधा भी मुझसे अधिक समय तक न चल सका, क्योंकि औषधियों के नाम इतने टेढे होते हैं कि मनुष्य की समझ में मुश्किल से आते हैं और फिर यह बताना कि कौन-सी औषधि विष है और कौन-सी नहीं है, और भी कठिन है। कुछ औषधियाँ ऐसी होती हैं कि बीस बूँद तक विष में नहीं गिनी जाती परन्तु इक्कीसवीं बूँद पर विष बन जाती हैं। अब आप ही बताइये, हाथ का झटका ही तो है। औषधि में बीस की अपेक्षा इक्कीस बूँदें पड़ जायँ तो रोगी स्वर्ग को सिधार जाय। न बाबा, मैं ऐसी कम्पाउण्डरी से बाज़ आया।

जब कहीं कोई काम न मिला और जीवन के पाँच वर्ष इसी तरह नौकरी की तलाश में निकल गये तो बड़े भाई साहब के मिज़ाज का पारा बैरोमीटर के अन्तिम बिन्दु तक पहुँच गया। एक दिन गरज कर बोले—"नौकरी क्या खाक मिलेगी, भगवान् पर भरोसा न धर्म में विश्वास। ऐसे बेपेंदे का नास्तिक लौंडा मैंने आज तक नहीं देखा। जब देखो, अखबार, रिसाले और सोशलिज़्म का लिट्रेचर पढ़ता रहता है। अरे तू नौकरी क्या करेगा। नौकरी के लिए मन मारना पड़ता है। दिन-भर भगवान् की प्रार्थना करनी पड़ती है। मुझे देख, दिन-भर दफ़्तर में काम करता हूँ, सुबह-शाम संध्या करता हूँ। रात को सोते समय फिर माला जपता हूँ। जभी तो भगवान् ने चार बच्चे दिये हैं। मे एण्ड मे एण्ड मे जैसी बड़ी कम्पनी का कैशियर बनाया है। संसार में इज़्ज़त दी है, रुतबा दिया है। डाक्टर सबसुखसहाय जैसे रईस भी मुझे स्वयं नमस्ते करते हैं। मुहल्ले-भर में रोब है और एक तू है कि...।"

और इसके बाद उन्होंने मुझे एक मोटी-सी गाली दी जो मुझे आज तक किसी ने न दी थी। मैं रोने लगा।

भाभी ने आकर सिर पर हाथ फेरा।

मैं और भी ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

भाभी ने ख़फ़ा होकर कहा—"ऐ है, क्यों ख़फ़ा होते हो बेचारे पर, अभी बच्चा ही तो है, भगवान् करेगा तो नौकरी भी मिल जायगी, इसमें इसका क्या दोष है ?"

"इसका दोष नहीं तो और किसका है ? बच्चा ही तो है ? छब्बीस बरस की इसकी उम्र हो गई है। इसके साथी दो-दो ब्याह कर चुके हैं। सुपरिंटेंडेंट, तहसीलदार, हेडक्लर्क बन गये हैं और यह अभी बच्चा ही है" यह कहकर उन्होंने मुझे मारने को हाथ उठाया।

भाभी तुरन्त बीच में आ गई "हैं हैं क्या करते हो ! छोटे भाई पर हाथ उठाते शर्म नहीं आती, तुम चले जाओ दफ्तर, मैं स्वयं इसे समझा लूँगी।"

भाई ने मुड़ते हुए कहा—"इसे कह दो, घर में रहना है तो यह नास्तिकता छोड़ दे। भगवान् का नाम लिया करे। रोज़ सुबह-शाम मन्दिर जाया करे। मैं यह कब कहता हूँ कि नौकरी नहीं मिलती तो इसका दोष है। हाँ भगवान् का नाम लेने से सबका बेड़ा पार हो जाता है। आखिर मेरे भाई ने कौन-सा कसूर किया है—हे भगवान् तू ही दया कर।"

इतना कहते-कहते मेरे भाई के नेत्र सजल हो उठे और वे मुझे गले से लगाकर बोले—"बुद्ध् (मेरा नाम बुधाराम है, परन्तु वे मुझे प्यार से बुद्धू कहा करते हैं) मन्दिर जाया कर बेटा। भगवान को नाराज़ नहीं करना चाहिये। भगवान मिल गये तो समझो सारा संसार मिल गया। मुझसे वायदा करो बुद्धू कि मेरी बात मानोगे।"

मैंने सिर झुका कर कहा—"बहुत अच्छा भैया।"

मैंने मार्क्स की पुस्तक बन्द करके रख दी और भैरों के मन्दिर का दरवाज़ा खटखटाने का निश्चय कर लिया।

(२)

भैरों के मन्दिर के तीन पुजारी थे। एक बड़ा-बूढ़ा, एक अधेड़ आयु का, तीसरा जवान। सबसे काइयां बड़ा-बूढ़ा था। सबसे कमीना अधेड़ आयु का और सबसे हँसमुख जवान। सबसे ज्ञानी बड़ा बूढ़ा था, सबसे झगड़ालू अधेड़ आयु का और सबसे अनपढ़ जवान था जो गायत्री मंत्र का जाप भी ठीक ढंग से न कर सकता था। हाँ, उसकी हँसी बड़ी मनोरम थी और उसका चेहरा बड़ा सुन्दर था और बदन गठा हुआ। भंग पीने से उसकी आँखों में हर समय लाल-लाल डोरे रहते और जब वह अपनी छलकती हुई आँखों से युवा लड़कियों की ओर देखता तो अनजान हिरनियाँ अपनी चौकड़ियाँ भूल जातीं। परन्तु अधेड़ आयु का पुजारी उसपर बड़ी कड़ी नज़र रखता था और बूढ़ा पुजारी उसे प्याज़ और दूसरी गर्म चीजें खाने से रोकता था।

भैरों का मन्दिर भैरों जती के मठ की मलकियत था। बूढ़ा पुजारी इस मठ का गुरू था। इस मठ का एक मन्दिर लाहौर में भी था और एक रुड़की में और एक जोधपुर में। परन्तु दिल्ली का भैरों-मन्दिर सबसे बड़ा था। यहाँ चढ़ावा भी सबसे अधिक चढ़ता था। इसके बाद लाहौर का नम्बर आता था और इसके बाद जोधपुर के मन्दिर का। रुड़की का मन्दिर बड़ी खस्ता हालत में था बल्कि वहाँ के पुजारी का वेतन भी दिल्ली से जाता था। बूढ़ा पुजारी हर मास की पहली तारीख को बैंक जाता और वहाँ से रुपया निकलवा कर रुड़की के पुजारी को मनीआर्डर द्वारा भेज देता।

भैरों के मन्दिर का आँगन बड़ा चौड़ा, मन्दिर बहुत तंग और भंग घोंटने का कमरा बहुत खुला था। इस कमरे की बग़ल में दो-तीन कमरे थे। तंग और अंधकारमय और छोटे-छोटे दरवाज़ों को लिये हुए। उनमें खिड़कियाँ नहीं थीं। इधर का कमरा बूढ़े पुजारी का था, उससे परे अधेड़ आयु के पुजारी का और उससे आगे नौजवान पुजारी रहता था। उससे आगे टीले पर झाड़ियाँ फैली हुई थीं और कहीं-कहीं

साधुओं की समाधिआँ नज़र आती थीं। आख़िरी समाधि मन्दिर से एक फर्लांग दूर थी। यहाँ पर बाहर से आनेवाले साधुओं के लिए मेहमानखाना था। इसमें केवल मठ के साधु ठहर सकते थे। मन्दिर और मेहमानख़ाने और कमरों के गिर्द चारों ओर अहाते की दीवाल खिंची हुई थी।

भैरों के मन्दिर में प्रतिदिन पचास-साठ रुपये का चढ़ावा चढ़ता था। प्रातःसमय स्त्रियों की भीड़ होती थी और संध्या-समय पुरुषों की, जो अपने कामों से निबट कर भगवान के दर्शनों के लिए आ जाते थे। परन्तु स्त्रियों को तो चूँकि प्रातः ही भगवान के दर्शन करने होते थे, इसलिए वे पौ फटते ही मन्दिर में आ जातीं और कई बार तो ऐसा होता कि वे नौजवान पुजारी को सोते से उठातीं और फिर घंटियोंका शोर, पहाड़ी टीलों से टकराता हुआ, गूँजता हुआ, बीसहज़ारी के वातावरण पर छा जाता और नौजवान पुजारी हड़बड़ा कर उठ खड़ा होता और स्त्रिआँ कहकहाकर हँसने लगतीं। जब कभी नौजवान पुजारी की ड्यूटी लगती कि वह प्रातः मन्दिर में भगवान को जगाये तो अधिकतर वह सोया हुआ ही पाया जाता था। नौजवान पुजारी को नींद बहुत आती थी। बूढ़ा पुजारी उसे इस बात से बहुत डाँटता था और अधेड़ आयु का पुजारी तो गालियाँ बकने लगता था। शायद नौजवान पुजारी को सज़ा देने के लिए ही अक्सर उसकी ड्यूटी प्रातः समय ही लगाई जाती थी। नौजवान पुजारी बहुत चिल्लाता, परन्तु गुरु का आदर करने के विचार से हर बार चुप हो जाता।

नौजवान पुजारी बहुत शीघ्र मेरा मित्र बन गया। मन्दिर के पूजा-पाठ से निबट कर हमलोग उसके कमरे में चले जाते और दिन-भर गप्पें हाँकते रहते। उसी ने मुझे बताया कि दोनों मन्दिरों से बूढ़े पुजारी को साल में लाखों रुपये की आय है और अब बूढ़े पुजारी के कदम समाधि में लटके हुए हैं और अब उसके स्थानापन्न का झगड़ा चल रहा है। वह चाहता है कि स्वयं गद्दी पर कब्ज़ा कर ले, परन्तु

आयु तथा रुतबे के खयाल से अधेड़ आयु के पुजारी ही को शायद यह स्थान मिलेगा। यह बहुत बुरा होगा। पहले-पहल बूढ़ा पुजारी उसे बहुत चाहता था परन्तु अब अधेड़ आयु के पुजारी को चाहने लगा था क्योंकि बूढ़े पुजारी का खयाल था कि नौजवान पुजारी ने पूजापाठ के आरम्भिक नियम भी न सीखे थे।

"फिर अब तुम क्या करोगे ?" मैंने उससे पूछा।

वह एक कोने में से प्याज़ की दो गठियाँ उठा लाया जो उसने छिपा रखी थीं। उसने एक प्याज़ मेरी ओर फेंक कर कहा—"लो खाओ" दूसरी गठी स्वयं खाने लगा—कचर-कचर। "मज़ेदार है न ?" उसने मुझसे पूछा—"मुझे प्याज़ बहुत पसंद है और कभी-कभी छिप कर मैं मांस भी खा लेता हूँ। भैरों जती के साधु को सब कुछ खाना चाहिये।"

"वह क्यों ?" मैंने बड़ी मुश्किल से कच्चा प्याज़ खाने की कोशिश करते हुए कहा।

"जती साधु के मन में कोई लालसा नहीं रहनी चाहिये। वह मांस खा ले, शराब पी ले, औरत के साथ सो ले, सब कुछ करने के बाद संसार की सब लालसाएँ मन से निकाल दे, जब जाकर भगवान मिल सकते हैं।"

वह हँसा।

"क्यों हँसते हो ?"

"किसी से कहोगे तो नहीं।"

"नहीं।"

"भैरों जती की सौगंध खाओ।"

"भैरों जती की सौगंध।"

"यह अधेड़ आयु का पुजारी बाबा फुमननाथ असल में बड़ा बदमाश है। सूरत देखो, साधु मालूम होता है या चंडाल ?"

"चंडाल।" मैंने सिर हिलाकर कहा।

"और यह चंडाल अपने आपको साधु कहता है। मैं इसकी सारी रगें पहचानता हूँ।"

"रगें ?"

"हाँ," वह दूसरे कोने से देसी शराब की एक बोतल उठा लाया "लो पियो।"

"पहले तुम।"

उसने बोतल मुँह से लगा ली। केवल दो घूँट रहने दिये।

हँसकर बोला—"इन्हें तुम पी लो, जती का चरणामृत है।"

"धन्य हो गुरूजी" मैंने दोनों कड़वे घूँट कण्ठ से नीचे उतारते हुए कहा—"अमृत का मज़ा आ गया गुरू ! हाँ, तुम बाबा फुमननाथ की बात कह रहे थे।"

"अव्वल नम्बर का हरामी है यह। गुरूजी तो खैर अब बहुत बूढ़े हो गये हैं। उन्हें तो धनिया लेकर बैठ गया। अब मुझे दिन-रात कहते हैं प्याज़ न खाओ, आँखें नीची रखो, धनिया खाया करो दिन-रात। यह बाबा फुमननाथ मुझ पर बड़ी कड़ी नज़र रखता है। क्या मजाल जो मैं मन्दिर में किसी लड़की की तरफ देख जाऊँ और स्वयं, स्वयं......."

"हाँ, स्वयं क्या करता है ?"

नौजवान पुजारी ने इधर-उधर देखा, बाहर दरवाज़े तक गया, फिर वापस आकर मेरे कान में धीरे से कहने लगा........

मैंने चिल्लाकर कहा—"नहीं नहीं, यह सच नहीं।"

"भैरों जती की सौगन्ध, मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है। नौजवान लड़कियों की ओर तो यह देखता ही नहीं। यह अपनी आयु की औरतें ढूँढ़ता है। गृहस्थी की बोझल मुसीबतों से तंग आई हुई औरतें हिस्टिरिया, निर्धनता और बच्चों के शोर-शराबे से परेशान होकर इसके पास आती हैं और इससे कहती हैं हमें भगवान् से मिला दो। हमें किसी तरह भी भगवान् से मिला दो। वे दिन-रात मन्दिर में

आती हैं, चढ़ावा चढ़ाती हैं, मन्दिर की सीढ़ियों पर अपने बालों से झाड़ू देती हैं, पुजारी के पाँव दबाती हैं, घंटों हाथ बाँधे आँगन में खड़ी रहती हैं और बाबा फुमननाथ से प्रार्थना करती हैं कि वह उन्हें भगवान् से मिला दे। एक बार भगवान् दिखा दे।"

"और फिर?'

"और फिर वह उन्हें भगवान् से मिला देता है" नौजवान पुजारी ने अर्थपूर्ण नज़रों से मेरी ओर देखते हुए कहा—"ही, ही, ही," वह ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगा। "एक बार जिस औरत ने भगवान् को देख लिया वह फिर घर की रहती है न घाट की, बस मन्दिर की हो जाती है।"

(३)

जोधपुर के मन्दिर से तीन बाईजी आईं। मठ की साधुनियाँ—और मन्दिर के मेहमानखाने में ठहरा दी गईं। उन्होंने गेरवे रंग की रेशमी साड़ियाँ पहन रखी थीं। उनके बाल खुले थे और माथे पर चंदन का टीका था। उनका रंग गोरा था। शरीर में जवानी थी। दिल में भगवान् का प्रकाश था। बीसहज़ारी का वातावरण उनके आगमन से ऐसे महक उठा जैसे हर स्त्री के लिए फिर सुहागरात आ गई हो। जब वे करतालें लेकर "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण" गातीं तो बीसहज़ारी की औरतों के मन झूमने लगते और वे सब उनकी आरती में शामिल हो जातीं। आजकल घरों में दिन-रात इन्हीं की बातें होती थीं। वे लोग जिन्होंने जीवन में कभी मन्दिर में कदम न रखा था अब दिन में दो-तीन बार अवश्य मन्दिर चले आते। एक मनचले का मन मन्दिर में दर्शनों से न भरा तो उसने अपने घर पर कथा रख दी। बस फिर क्या था। लोग-बाग तीनों बाईजी को देखने चले आ रहे हैं स्त्रियाँ प्रसाद बाँट रही हैं। बाईजी के लिये दुशाले मँगाये जा रहे हैं। हर कथा पर सौ-सवा सौ की रकम बन जाती है। वैसे तो यों भी बाईजी का हुक्म था कि कथा से पहले मन्दिर में तीन दुशाले और साठ रुपये

पहुंचा दिये जायं नहीं तो कथा नहीं होगी। जब एक ने कथा करवाई तो अन्य घरों के लोग कब चूकनेवाले थे। हर घर में स्त्रियों ने ज़िद करके कथा रख दी। साठ रुपये और तीन दुशाले और भगवान् की कथा। क्या महँगा सौदा था। अरे साहब वह सब्ज़ीमंडी की स्त्रियों की भजन-मंडली जो इससे पहले घरों में जाकर कथा-वार्ता करती थी वह भी पचास से कम न लेती थी और फिर ऐसी काली कुतनी, खुदरी स्त्रियाँ थीं उस भजन-मंडली में कि यदि भगवान् भी देख पायें तो लज्जा से आँखें झुका लें और यहाँ इन "बाइयों" के संगीत में क्या आनन्द था, यों समझिए जैसे स्काच व्हिस्की गले में उंडेली जा रही है—वाह वाह-वाह !!

ज़रा यह आरती सुनिये—

"हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण !"

बाइयों के केश हवा में लहरा रहे हैं। नागन-सी लटें कपोलों से उलझ रही हैं। एक लट छोटी बाईजी के ओठों तक आ गई है जैसे उन पतले-पतले ओठों को डसना चाहती है। नाज़ुक गले के उतार-चढ़ाव से अपना दिल धक-धक कर रहा है। वे मासूम छातियाँ भगवान् के दर्शनों के लिए ही बेचैन हो धड़क रही हैं। आँखों में काजल की रेखा कानों की ओर चली गई है। वे कानों की पतली-पतली लवें, कोई कच्चा ही खाले उन्हें। हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! यह बुरा विचार मन में क्यों आया, भगवान् की कल्पना करो, वह देखो गोपियाँ कदम की छायातले मनोहर गीत गा रही हैं और भगवान् कृष्ण बाँसुरी हाथ में लिये नाच रहे हैं। बड़ी बाईजी की आयु पच्चीस वर्ष से अधिक न होगी। परन्तु मुख पर कैसी गज़ब की गंभीरता है। इन आँखों ने कौन-सा रंग नहीं देखा। ये सुडौल हाथ जहाँ कलाइयों पर गढ़े पड़ते हैं, मक्खन और मलाई से तैयार किये गये हैं। ये मेंहदी के रंग-जैसे पाँव कभी किसी काँटे की चुभन से परिचित नहीं हुए। बड़ी बाईजी की गम्भीरता और यौवन एक पके हुए सेब की तरह

रंगीन है जो अभी टहनी से गिरा चाहता हो। बुद्धू आगे बढ़कर अपनी झोली बढ़ा दे।

"हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!"

नहीं तो इन मंझली बाईजी के संसार-भर को पागल बना देने वाले सौंदर्य को देख जो इन दोनों बाइयों में एक नगीने की तरह चमक रही हैं। ऐसे काले, ज़हरीले, घुँघराले बाल तूने कहाँ देखे हैं। ऐसी फबन तूने कहाँ देखी है जैसे बच्चा सोते में जाग उठे। जैसे सुबह के धुँधलके में ओस से भीगा हुआ फूल किसी सुन्दर स्वप्न को देखे और आँखें खोलकर खिल जाय। इस अधकच्ची, अधपकी कली का मज़ा ही कुछ और है। करतालों की लय पर गेरवे समुद्र की लहरें फिर जाती हैं, टूटकर खो जाती हैं, बिफर जाती हैं, टूटकर गुम हो जाती हैं। ये सुन्दर वादियाँ, ये टीले, ये दूध के झरने!

"हरे कृष्ण! हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!"

(४)

बूढ़ा पुजारी मर गया।

मन्दिर के घटे शोर कर रहे हैं। पुजारी रो रहे हैं। औरतें बैन कर रही हैं। बाइयाँ थालों में फूल सजाये उसकी समाधि की ओर जा रही हैं। दिन-भर लोगों का ताँता-सा बँधा रहा है।

अब रात हो गई है।

टीले सो गये हैं, साधु अपनी समाधि में सो गया है। बीसहज़ारी के छोटे-छोटे, नन्हें-नन्हें घरों में नन्हें-नन्हें जीवन के बुलबुले सो गये हैं। भूमडल की हरकत थम-सी गई है।

आँगन में नौजवान पुजारी अकेला बैठा है। आज उसने भंग पी है, चरस पी है, शराब पी है फिर भी उसका दुःख दूर नहीं हुआ।

"गुरू" मैं उसके निकट जाकर धीरे से कहता हूँ और उसके कंधे पर हाथ रख देता हूँ।

वह हौले-हौले रोने लगता है। धीरे-धीरे अँगोछे से आँसू पोंछता जाता है।

"तुम्हें क्या कष्ट है गुरू ?"

"मैं गद्दी चाहता हूँ। और औरत का शरीर चाहता हूँ। मैं होटल का खाना चाहता हूँ। मैं अपनी आत्मा से हर लालसा दूर करना चाहता हूँ। न जाने मैं क्या चाहता हूँ।"

"तू गद्दी चाहता है, होटल का खाना चाहता है।" कोई उसके सिर के ऊपर आकर कहता है। हम दोनों घूम जाते हैं। अधेड़ आयु का पुजारी क्रोध-भरी नज़रों से हमारी ओर देखते हुए कहता है—"इस मन्दिर में वासना के भिखारियों के लिए कोई स्थान नहीं है। निकल जाओ यहाँ से अभी।"

नौजवान पुजारी सीधा तना खड़ा है। उसकी बाँहों की मछलियाँ उभर आई हैं। उसका जबड़ा एक चट्टान की तरह जम गया है। वह रुक-रुक कर कहता है—"तुझे जान से मार डालूँगा, चला जा यहाँ से।"

बाबा झुमननाथ भाग जाता है।

मेहमानखाने में प्रकाश है।

नौजवान पुजारी के पाँव मेहमानखाने की ओर बढ़ते हैं। वह एक बार मेरी ओर देखता है। फिर सिर हिलाकर आगे बढ़ जाता है। आगे और आगे। फिर पीछे मुड़कर नहीं देखता। वह बूढ़े पुजारी की फूलों से ढकी हुई समाधि से आगे बढ़ जाता है।

अब वह मेहमानखाने के दरवाज़े पर पहुँच गया है। वह भीतर प्रविष्ट हो जाता है। दरवाज़ा बन्द हो जाता है।

फिर प्रकाश बुझ जाता है।

टीले सो गये हैं। साधु अपनी समाधि में सो गया है। बीसहज़ारी के छोटे-छोटे, नन्हें-नन्हें घरों में जीवन के बुलबुले सो गये हैं। भूमंडल की हरकत थम-सी गई है।

(५)

दूसरे दिन पता चला कि बाबा फुमननाथ को रातोरात किसी ने कत्ल कर दिया। पुलिस ने नौजवान पुजारी पर सन्देह किया और तीनों बाइयों पर। उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। आखिर में तीनों बाइयों को छोड़ दिया गया और नौजवान पुजारी पर मुकदमा चलाया गया कत्ल के इल्ज़ाम में। परन्तु प्रमाण न मिलने से उसे भी रिहाई मिल गई। रिहा होते ही उसने सबसे पहला काम यह किया कि बाबा फुमननाथ की समाधि स्वयं अपनी निगरानी में तैयार कराई। अब वहाँ तीनों बाइयाँ सुबह-शाम फूल चढ़ाती हैं।

जोधपुर से तीनों बाइयों को वापस आने के लिए वहाँ के मन्दिर के पुजारी ने लिखा था परन्तु नौजवान पुजारी ने उन्हें भेजने से इन्कार कर दिया। क्योंकि दिल्ली में धर्म-ज्ञान के चर्चे की बड़ी आवश्यकता है। नौजवान पुजारी ने लिखा कि अगर तुम्हारे पास ऐसी दो-चार और बाइयाँ हों तो उन्हें भी दिल्ली भेज दो।

इस पर जोधपुर का पुजारी चुप हो गया।

मठ ने सर्वसम्मति से नौजवान पुजारी को अपना गुरु मान लिया। क्या हुआ यदि उसे गायत्री मंत्र का जाप नहीं आता था। वह अब बूढ़े पुजारी की बहुत बड़ी दौलत का मालिक था। वह दौलत जो बूढ़े पुजारी ने बैंक में नहीं, अपनी कोठरी में भीतर दबा रखी थी।

"तुम्हें कैसे पता चला?" मैंने उससे पूछा।

"यों ही बैठे-बिठाये भगवान् ने मुझे सुझा दिया। मँझले बाबा को ठिकाने लगाकर जब मैं बड़े पुजारी की कोठरी में घुसा तो एकाएक भगवान् ने मुझे सुझा दिया। एक हाथ संकेत कर रहा था कि इस कोठरी में कुछ है। इसे खोद, इसे खोद। अगर उस वक्त रातोरात मैं कोठरी न खोदता तो यह धन मुझे कैसे मिलता और मैं मुकदमा कैसे लड़ता? इस गद्दी का मालिक कैसे बनता?"

"गद्दी का मालिक" उसने ऐसे गर्वपूर्ण स्वर में कहा कि मेरी नज़रों के सामने एक मुलाकाती कार्ड घूम गया।

भैरों का मन्दिर लिमिटेड
(शाखायें)
दिल्ली, जोधपुर, लाहौर, रुड़की
मालिक : बाबा चमननाथ गोसाईं

उसी समय मैंने चिल्लाकर कहा—"मिल गये, मिल गये, मिल गये।"

"क्या हुआ ?" साधु ने घबराकर पूछा।

मैंने अपने घर की ओर भागते हुए कहा—"मुझे भगवान् मिल गये, मिल गये।"

(६)

पिछले पन्द्रह वर्ष से मैं बम्बई में रहता हूँ। यहाँ जूहू के पास मेरा अपना भैरों का मन्दिर है। एक मन्दिर मैंने सूरत में और एक अहमदाबाद में बनवाया है। आनन्दपुर में बाइयों का मठ खोला है। भारत-भर में ऐसी सुन्दर साधुनियाँ आपको कहीं नहीं मिलेंगी। हर वर्ष आठ मास के लिए ये बाइयाँ भारत का दौरा करके रुपया और दुशाले एकत्रित करती हैं। पिछले दिनों भारत का बँटवारा हो जाने से बड़ा फसाद फैला। लाखों हिन्दू-मुसलमान मारे गये, परन्तु मेरे मन्दिरों की आमदनी में कोई कमी न हुई। हाँ, बेचारे दिल्लीवाले गुरुजी का एक मन्दिर मारा गया—भैरों का मन्दिर जो लाहौर में था। परन्तु गुरुजी भला कब चूकनेवाले थे उन्होंने तुरन्त दिल्ली में एक मसजिद पर कब्ज़ा कर लिया और वहाँ भैरों जी की मूर्ति स्थापित कर दी। शरणार्थी लोग स्थान-स्थान पर दिल्ली, बम्बई, जोधपुर, अहमदाबाद हर बड़े शहर में भिक्षा मांगते हैं परन्तु जो भिक्षा मेरी बाइयों को मिलती है उसका पचासवाँ भाग भी शरणार्थियों को नहीं मिलता। शायद हज़ारों

औरतों ने मुझसे उन्हें भगवान् से मिलाने को कहा होगा। जिनके भाग्य अच्छे थे उन्हें भगवान् मिल गये और हमारे भक्तों की श्रद्धा भी बढ़ती गई। अब मैं अपना कारोबार बढ़ाने की सोच रहा हूँ। इस वर्ष इरादा है कि एक फ़िल्म कम्पनी भी खोल डालें और कालबादेवी रोड पर एक गणेशजी का मन्दिर भी बना डालें। कालबादेवी रोड पर लखपती गुजरातियों और मारवाड़ियों का धंधा चलता है। और ये लोग गणेशजी के दास हैं। आशा है यह मन्दिर खूब चलेगा। बड़े भाई साहब को चिट्ठी लिखी है। उनकी राय आने पर काम शुरू करूँगा। अब मैं बड़े भाईजी की राय के बिना कोई काम नहीं करता। उन्होंने मुझे धर्म-ज्ञान का सच्चा मार्ग दिखाया है। यदि अपनी मनमानी करता तो उसी तरह बेकार, नास्तिक रहता और सोशलिज़्म की फ़जूल-सी पुस्तकें पढ़कर सीधा नरक में जाता।

"हरे कृष्ण! हरे कृष्ण!! हरे कृष्ण!!!"

गालीचा

अब तो यह गालीचा बहुत पुराना हो चुका है, परन्तु आज से दो वर्ष पूर्व जब मैंने इसे हज़रतगंज में एक दुकान से खरीदा था तो उस समय यह गालीचा बिलकुल मासूम था। इसकी जिल्द मासूम थी, इसकी मुस्कराहट मासूम थी, इसका हर रंग मासूम था। अब नहीं दो साल पहले। अब तो इसमें विष घुल गया है। इसका एक-एक तार विषैला और बदबूदार हो चुका है। रंग फीका पड़ गया है। मुस्कान में आँसुओं की झलक है और जिल्द में किसी उपदंशकग्रस्त रोगी की तरह स्थान-स्थान पर गढ़े पड़ गये हैं। पहले यह गालीचा मासूम था अब निराशावादी है। विषैली हँसी हँसता है और इस तरह साँस लेता है जैसे संसार का सारा कूड़ा-कर्कट उसने अपनी छाती में छिपा लिया हो।

इस गालीचे का कद नौ फीट है। चौड़ाई में पाँच फीट। बस जितनी एक आम पलंग की चौड़ाई होती है। किनारा चौकोर बादामी है और डेढ़ इंच तक गहरा है। इसके बाद असल गालीचा शुरू होता है और गहरे लाल रंग से शुरू होता है। यह रंग गालीचे की पूरी चौड़ाई में फैला हुआ है और दो फीट की लम्बाई में है। अर्थात् २ × ५ फीट का चौकोर। लाल रंग की एक झील बन गई है, परन्तु इस झील में भी लाल रंग की झलकियाँ कई रंगों के तमाशे दिखाती

हैं। गहरा लाल, गुलाबी, हल्का गुलाबी और सुर्ख जैसे गंदा रक्त होता है। लेटते समय गालीचे के इस भाग पर मैं सदैव अपना सिर रखता हूँ और मुझे हर बार यह अनुभव होता है कि मेरे सिर में जोंकें लगी हैं जो मेरा गंदा रक्त चूस रही हैं।

फिर इस खूनी चौकोर के नीचे पाँच और चौकोरें हैं जिनके अलग-अलग रंग हैं। ये चौकोरें गालीचे की पूरी चौड़ाई में फैली हुई हैं। इस प्रकार कि अन्तिम चौकोर पर गालीचे की लम्बाई भी समाप्त हो जाती है और फिर दरी की कोर शुरू होती है......खूनी चौकोर के बिलकुल नीचे तीन छोटी-छोटी चौकोरें हैं—पहली श्वेत और स्याह रंग की शतरंजी है। दूसरी श्वेत और नीले रंग की, तीसरी ब्ल्यू ब्लैक और खाकी रंग की। ये शतरंजिया दूर से बिल्कुल चेचक के दाग़ों की तरह दिखाई देती हैं और निकट से देखने पर भी इनकी सुन्दरता में अधिकता नहीं आती बल्कि नीलामशुदा पुराने कोट की जिल्द की तरह मैली-मैली और बदसूरत नज़र आती है। पहली चौकोर यदि खून की झील है तो ये तीन छोटी-छोटी चौकोरें इकट्ठी होकर पीप की झील का-सा प्रभाव उत्पन्न करती हैं। इनके श्वेत, काले, पीले ब्ल्यू ब्लैक रंग पीप की झील में गडमड होते नज़र आते हैं। इस झील में मेरे कन्धे, मेरा दिल और मेरे फेफड़े पसलियों के बक्स में धरे रहते हैं।

चौथे चौकोर का रंग पीला है और पाँचवें का हरा, परन्तु ऐसा हरा है जैसे गहरे समुद्र का होता है। ऐसा हरा नहीं जैसा वसन्त ऋतु का होता है। यह एक खतरनाक रंग है। इसे देखकर शार्क मछलियों की याद आने लगती है और डूबते हुए जहाज़रानों की चीख़ें सुनाई देने लगती हैं और उछलती हुई तूफानी लहरों की गूँज और गरज कम्पन-सा पैदा करती है और यह पीला मटियाला रंग तो मनहूस है ही। यह रंग केसर की तरह है, वसंत की तरह पीला नहीं। यह रंग मिट्टी की तरह पीला है। क्षय रोगी की तरह पीला है। पहले पाप

की तरह पीला है। एक ऐसा पीला रंग जिसमें पश्चात्ताप का हल्का सा अनुभव भी शामिल है। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे यह चौकोर बार-बार कह रहा हो मैं क्यों हूँ ? मैं क्यों हूँ.......।

जहाँ मैं अपना अनुभव रखता हूँ उसके दायें कोने में नीले और पीले रंग की दस सीधी रेखायें बनी हुई हैं और जहाँ मैं अपने पाँव पसार कर सोता हूँ वहाँ ग्यारह सीधी रेखायें हैं। ये पीली और फीरोज़ी रंग की हैं। गालीचे के मध्य में छः सीधी रेखायें लाल और श्वेत रंग की हैं और उनके बीच में एक गहरा स्याह बिन्दु है........ जब मैं गालीचे पर लेट जाता हूँ तो मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे सिर से पाँव तक किसी ने मुझे इन सीधी रेखाओं की हुकों में जकड़ लिया है। मुझे सलीब पर लटका कर मेरे मन में एक गहरे स्याह रंग की कील ठोंक दी हो। चारों ओर गंदा रक्त है, पीप है और हरे रंग का समुद्र है जो शार्क मछलियों और समुद्री हज़ारपायों से भरा पड़ा है। शायद मसीह को भी सलीब पर इतना कष्ट न हुआ होगा जितना मुझे इस गालीचे पर लेटते समय प्राप्त होता है। परन्तु कष्ट साधना तो मनुष्य का एक नियम है इसीलिए तो यह गालीचा मैं अपने आपसे अलग नहीं कर सकता। न इसके होते हुए मुझे कोई और गालीचा खरीदने का साहस होता है। मेरे पास यही एक गालीचा है और मेरा विचार है कि मरते समय तक यही एक गालीचा रहेगा।

इस गालीचे को वास्तव में एक युवती खरीदना चाहती थी। हज़रतगंज में एक दुकान के भीतर वह इसे खुलवाकर देख रही थी कि मेरी नज़रों ने इसे पसंद कर लिया और वह युवती कुछ निश्चय न कर सकी और इसे वहीं छोड़कर अपने ब्लाउज़ के लिए रेशमी कपड़े देखने लगी।

मैंने मैनेजर से कहा—"यह गालीचा मैं खरीदना चाहता हूँ।"

वह युवती की ओर संकेत करते हुए बोला—"मिस रूपवती—

शायद पसन्द कर चुकी हैं—शायद ! ठहरिये मैं उनसे पूछता हूँ ।"

रूपवती बोली—"गालीचा बुरा नहीं ।"

"बुरा नहीं, क्या मतलब है आपका ?" मैंने भड़ककर कहा—"ऐसा गालीचा संसार में और कहीं न होगा। दांते की कल्पना ने भी ऐसा सुन्दर नक्शा तैयार न किया होगा। यह गालीचा अस्पताल की गदी बाल्टी की तरह सुन्दर है। पागलपन के रोगों की तरह आत्म-वर्द्धक है। यह आग और पीप की नदी हातमताई की यात्रा की याद दिलाती है। प्राचीन अतालवी संन्यासी चित्रकारों की अनुपम कृतियों की याद ताज़ा करता है। यह गालीचा नहीं इतिहास है, मानव की आत्मा है।"

वह मुस्कराई। उसके दाँत अत्यन्त श्वेत थे, परन्तु ज़रा टेढ़े-मेढ़े और एक-दूसरे से जुड़े हुए-से। फिर भी वह मुस्कराहट अच्छी मालूम हुई। कहने लगी—"क्या आप कभी इटली गये हैं ?"

मैंने उत्तर दिया—"इटली कहाँ ! मैं तो कभी हज़रतगंज के उस पार भी नहीं गया। उम्र गुज़री है इसी वीराने में—यह पान की दुकान और वह सामने कॉफी हाउस।"

मैनेजर ने अब हमारा परिचय कराना उचित समझा, बोला—"आप कलाकार हैं। कागज़ पर चित्र बनाते हैं। यह मिस रूपवती हैं। यहाँ लड़कियों के कालेज में प्रिन्सिपल होकर आई हैं। अभी-अभी इंग्लैंड से शिक्षा प्राप्त करके यहाँ........"

वह बोली—"चलिये यह गालीचा आप ही ले लीजिये। मुझे तो अधिक पसंद नहीं।"

"आपकी बड़ी कृपा है" मैंने गालीचे का मूल्य चुकाते हुए कहा—"क्या आप मेरे साथ—काफी पीना पसन्द करेंगी ? चलिये न ज़रा कॉफी हाउस तक, यदि बुरा न......अर्थात्—"

"धन्यवाद ! लेकिन मैं ज़रा यह ब्लाउज़ देख लूँ।" वह फिर मुस्कराई।

मुस्कराहट भी भली मालूम हुई। सुन्दर गोल चेहरे का रंग पीला था। सन्दली रंग पर ओठों की हल्की-सी लाली एक विचित्र प्रकार का रसीला सम्मिश्रण-सा उत्पन्न कर रही थी। ब्लाउज़ का कपड़ा खरीदकर जब वह मेरे साथ चलने लगी तो लड़खड़ा गई। मैंने बाँह से पकड़कर सहारा दिया और पूछा "क्या बात है? क्या आप सदैव लड़खड़ाकर चलती हैं?"

वह बोली—"नहीं तो......." मैंने ध्यान से देखा। पाँव पर पट्टी बँधी हुई थी।

"घाव है?" मैंने पूछा।

"हाँ" अँगूठे का नाखून बढ़ गया था। जिल्द के अन्दर....... जहाज़ का सर्जन बिल्कुल गधा था ......उसने माथे पर साड़ी का पल्लू सरकाया और जब वह पहली बार मुड़ी तो मैंने उसके बालों में गर्दन के निकट दाईं ओर गुलाब के पीले फूल टिके हुए देखे। फिर जब वह मुड़ी तो माथे का कुमकुम उज्ज्वल नज़र आया। इससे पूर्व यह कुमकुम इतना सुन्दर क्यों न था? मैंने सोचा।

कॉफ़ी हाउस में बैठकर मालूम हुआ कि वह सुन्दर थी। कुछ तो काफ़ी हाउस में प्रकाश का प्रबन्ध ऐसा है कि पुरुष कुरूप नज़र आते हैं और स्त्रियाँ सुन्दरतम। फिर—हाँ—कुछ तो था, अन्यथा ये लोग बार-बार मुड़कर क्यों देखते थे? स्त्रियाँ तेज़ नज़रों से क्यों घूरती थीं? बैरे इतने शीघ्र मेज़ पर क्यों आ जाते थे?

वह मुस्कराकर कहने लगी—"देखो बैरा, थोड़ा-सा गरम दूध और गरम पानी एक अलग प्याले में।"

"गरम पानी तो—" बैरे ने रुककर कहा।

"थोड़ा-सा गरम पानी, बस" वह फिर मुस्कराई और बैरा सिर से पाँव तक पिघल गया जैसे उसका सारा शरीर शीशे का बना हुआ हो। मैं उसे पिघलते हुए देख रहा था। उसके ओठों पर मुस्कराहट आई और उसके सारे शरीर को पिघलाती हुई चली गई। यह नज़र क्या है? यह

चमक कैसी है ? क्या यह कॉफ़ी हाउस की बिजलियों का चमत्कार तो नहीं ?

"और बैरा—अंडे के सैंडविचेज़" वह फिर बोली।

बैरे ने वापस आकर कहा—"जी अंडे के सैंडविचेज़ तो ख़त्म हो गये।"

"थोड़े-से भी नहीं ?" उसकी बड़ी-बड़ी मासूम, घायल-सी आँखें और भी खिलती हुई मालूम हुईं, बस लाचार। "एक प्लेट भी नहीं ?"

सैंडविचेज़ भी मिल गये।

"नहीं बिल मैं दूँगी।"

"नहीं, यह कैसे हो सकता है, मैं पुरुष हूँ।"

वह हँसी "बहुत पुरानी बात है।" और उसने बिल दे दिया।

घर पर नौकर को गालीचा पसंद न आया। उन दिनों एक तेज़ स्वभाव का कवि मेहमान था जो फ़्री वर्स में कविता लिखा करता था, शराब पीता था और पाँच वक्त नमाज़ पढ़ता था। उसे भी गालीचा पसंद न आया। मैंने पूछा तो बस "हूँ" करके रह गया। वह कवितायें जितनी लम्बी लिखता था बातें उतनी ही कम करता था।

"हूँ, का क्या मतलब है ?" मैंने चिढ़कर कहा—"कुछ तो कहो, इन रंगों का मेल ...."

"हूँ।"

रूप उसे बड़े ध्यान से देख रही थी। अब वह खिलखिला कर हँस पड़ी। उस सड़े-बुसे कवि से कहने लगी—"अपनी नई कविता सुनाओ ....तुम्हें मालूम है आजकल अस्पैंडर और लाडन किस चीज़ पर कवितायें लिख रहे हैं ?"

"हूँ !" वह अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरकर गुर्राया।

मैंने रूप से पूछा—"क्या उन्होंने तुम्हें अपनी कवितायें सुनाई थीं ?"

"नहीं, लेकिन मुझे जों ने बताया था।"

"कौन ? जौ ?"

"जौ ब्राउन ! नाम नहीं सुना क्या ? आजकल आक्सफ़ोर्ड का सर्वप्रिय कवि है। भारत में अभी उसकी कविताएं नहीं पहुँची। लंदन में मुझ पर मोहित हो गया था।" वह कुछ विचित्र, कुछ निर्लज्ज, कुछ शर्मीली-सी हँसी के साथ कहने लगी और माथे का कुमकुम याकूत की तरह चमकने लगा।

मैंने पूछा—"तुम्हारा जीवन विजयपूर्ण मालूम होता है।"

"नहीं" उसने आह भरकर कहा—"कुछ इस प्रकार कि मेरा जी चाहा कि उसे छाती से लगा लूँ।"

"हूँ।" कवि बोला।

रूप मुस्कराकर बोली—"तुम्हारा कवि बहुत बातूनी है....सुनो, मैं तुम्हें एक कविता सुनाती हूँ।"

मेरा आश्चर्य बढ़ता जा रहा था। मैंने पूछा—"तुम कवि भी हो ?"

"नहीं, यह कविता मेरी माता ने लिखी थी।"

"ठहरो, मुझे यह गालीचा बिछा लेने दो।"

गालीचा बिछ गया और रूप ने कविता गाकर सुनाई। बंगाली कविता थी। उदास, विरह की रात की तरह जली हुई....दीपक की भाँति सुन्दर थी। स्वर में शोले का-सा कम्पन, प्रभाव मदिरा की तरह नशीला, युवतियाँ कतार की कतार....घड़े उठाये घाट की ओर जा रही थीं। समुद्र की हरी लहरें उछल रहीं थीं। शिवजी का डमरू बज रहा था, पार्वती नृत्य कर रही थीं, बरफ़ गिर रही थी....अब वातावरण मौन था और रूप की आँखों में आँसू थे....आँसू गालों से ढलक कर गालीचे पर गिर पड़े और वह लाल चौकोर-जैसे आग का शोला बन गई........।

"तुम्हें जौ ब्राउन से प्रेम नहीं हुआ ?" मैंने पूछा।

रूप ने अपने आँसू पोंछ डाले। बोली—"मुझे जिस लड़के से

हज़ार प्रयत्न करने पर भी यह मित्रता प्रेम में परिवर्त्तित नहीं हो सकती। यह भाग्य नहीं तो और क्या है ? फिर कहने लगती—"कवि ! अपनी कविता सुनाओ।"

कुछ दिनों के बाद उसने एकाएक मुझसे कहा—"मुझे तुम्हारे कवि से प्रेम हो गया है।"

"झूठ....उस मुराद से........।"

"उसकी आँखें देखी हैं तुमने"—वह आह भरकर बोली। "जैसे मसीह सलीब पर लटका हुआ हो—कितना दुःख है उन आँखों में।"

मैंने कहा—"अगर तुम कहो तो मैं अपनी आँखें अंधी कर लूँ।"

शायद मेरी बात उसे बुरी लगी। गंभीर होकर बोली—"क्या करूँ ?"

"हाँ, दिल ही तो है।" मैंने व्यंगपूर्वक कहा।

"हूँ।" कवि बोला।

जिस दिन वे दोनों विदा हुए मैंने घर पर एक छोटी-सी दावत दी। रूप ढाके की काली साड़ी पहने हुए थी। आँखों में काजल गहरा था। रेशमी चूड़ियों का रंग भी काला था। हर रोज़ उसे देखकर उजाले का, सूरज का, चाँद का, चाँद की किरणों का, प्रकाश का अनुभव होता था। न जाने आज उसे देखकर क्यों अंधकार का अनुभव हो रहा था। क्यों वह अपने उस पूर्ण प्रसन्नता के क्षणों में भी दुःख और निराशा की मूर्ति दिखाई देती थी। क्या यह निर्धन कलाकार के मन का अंधकार तो नहीं था। आज मैंने उससे वह गीत सुनाने की प्रार्थना की थी जो उसने पहले दिन गाया था....मुझे स्मरण है, गाने के बाद वह नाची भी थी। मैंने उसका चेहरा नहीं देखा, मैं उसके पाँव देखता रहा। धुँधले-धुँधले-से पाँव जिन में महँदी की सुर्ख रेखा बिजली की तरह चमक उठती थी। उस अंधकार में केवल यहाँ प्रकाश था। वह नाचती रही और मैं उस अंधकार में

मेंहदी रंग की रेखा का नृत्य देखता रहा और जब नृत्य समाप्त हुआ तो मैंने वह पाँव उठाकर अपनी छाती में रख लिए। पाँव आज तक इस छाती में सुरक्षित क्यों हैं...क्या इस अहराम में ममियों के अतिरिक्त और किसी के लिए स्थान नहीं ?

वह चली गई तो मैं फिर गालीचे पर आ बैठा। पीले गुलाब की एक कली उसके जूड़े से निकलकर गालीचे पर पड़ी रह गई थी........ मेरे दिल में शायद अब रूप की कोई याद बाकी नहीं, केवल ये दो पाँव हैं और एक यह गुलाब की पीली कली।........कैसा चित्र है यह ? कलाकार होकर भी मैंने शायद ऐसा विचित्र चित्र इससे पूर्व कभी नहीं बनाया.......फिर ?

मैं गालीचे से पूछता हूँ।

गालीचा उत्तर देता है "मैं तो सलीब पर हूँ। सलीब मृत्यु प्रदान करती है उसे जीवन के क्रम का ज्ञान नहीं........"

अच्छा इसे भी जाने दो। जो हुआ सो हुआ। यदि जीवन में कब्र ही का आनन्द लेना है तो क्यों न उसे आराम से प्राप्त किया जाय। यदि शहद में विष ही मिलाकर पीना है तो क्यों न खालिस विष पिया जाय। यदि सरलता कायम नहीं रह सकती तो क्यों न पाप की गोदी में पनाह ली जाय। आओ, अपनी आत्मा में जो एक हल्की-सी लौ रह गई है इसे भी मौन कर दें और बढ़ते हुए अंधकार में पाप को फैलते हुए देखें और जीवन को मुँह चिढ़ायें और कहकहे लगायें। प्रेम न सही, लालसा ही सही।

कलाकार ने एक और लड़की से जान-पहचान करली जो 'वीक' में नौकर थी। उसका नाम था आशा; परन्तु सूरत पर बिल्कुल निराशा बरसती थी। ऐसी भूखी लड़की थी वह जैसी कभी देखी ही नहीं थी! कुतिया की तरह साथ-साथ लगी फिरती थी बेचारी। कलाकार को शायद उस पर दया आने लगी थी। वह उससे स्नेह बरतने लगा। एक पालन करनेवाले स्नेही की भाँति अब वह उसे हर जगह लिये

फिरता। लोग व्यंगपूर्वक उसके चुनाव की सराहना करते और वह एक प्रकार के आदर से सराहना कबूल करता। कोई कहता, "भई बड़ी बदसूरत है वह, तुमने क्या सोचकर...?" तो वह लड़ने पर उतारू हो हो जाता। घंटों उसकी सुन्दरता का विश्लेषण करता। कोयले से उसने आशा का चित्र बनाया और फिर अपने स्टुडियो में हर किसीको वह चित्र दिखाता। वह अपने घाव दिखा रहा था........देखो....देखो ....देखो मुझे तुम्हारी क्या परवाह है........मैं अपनी आत्मा का स्वयं मालिक हूँ......विष !.......कोयले !

परन्तु वह जो कभी हज़रतगंज के उस पार न गया था, अब वहाँ से भागने की सोचने लगा। फुटपाथ पर चलते-चलते वह हज़ारों उल्टे-सीधे स्वप्न देखने लगता। मार्ग के हर पत्थर पर उसे किसी के पाँव के धुँधले-धुँधले साये काँपते हुए मालूम होते। कॉफ़ी की प्याली के हर श्वास में वह उसके गर्म श्वास का स्पर्श महसूस करता और बिजली के लट्टुओं के उज्ज्वल प्रकाश में उसे हज़ारों कुमकुम तैरते दिखाई देते। यह हँसी,वह मुड़कर देखता, कहाँ से आई थी ? परन्तु यह तो वही काश्मीरी पालतू मैना अपने पिंजरे में चहक रही थी। बुलबुल पिंजरे की तीलियाँ तोड़कर उड़ गई थी और वह अभी तक क्यों हज़रतगंज के वीराने में कैद था.......क्यों ? क्यों ? क्यों ? वह मेंहदी-रँगी रेखा बार-बार बिजली की तरह चमक कर उससे बार-बार पूछ रही थी।

अब जबकि वह शहर छोड़कर जा रहा था उसने अपने सब मित्रों को, उस 'वीक' लड़की को और उसकी सब सहेलियों को दावत दी और जब दावत के बाद सबलोग चले गये तो 'वीक' लड़की हैरान और परेशान उसी गालीचे पर बैठी रही थी और फिर एकाएक उसकी छाती से लग कर रो पड़ी थी। ये गर्मागर्म आँसू उसकी छाती में बरफ़ के फूल बने जा रहे थे। प्रेम का उत्तर प्रेम क्यों नहीं होता ? यह कैसी आग है जो एक को जलाती है और दूसरे के दिल में पत्थर की सिल बन जाती है ?

झुक में थीं और पाँव नीचे की सीधी रेखाओं में। गालीचे ने चुपके से उसके दिल में एक काली कील ठोंक दी। अहराम के लिए एक और ममी तैयार हो गई, परन्तु वहाँ जगह कहाँ थी? छाती में अब भी वही दो पाँव नाच रहे थे......और वही गुलाब की एक पीली कली......।

मैंने गालीचे से पूछा—"यह कैसा खेल है? मैं किसको मुँह चिढ़ा रहा हूँ? ये घाव किसके हैं? यह लड़की क्यों रो रही है? यदि यह सब भाग्य है तो फिर यह क्रियात्मक चेष्टा क्या है जो ममी को भी जीवित कर देने पर तुली हुई है।"

गालीचे ने उत्तर दिया—"मुझे मालूम नहीं, मैं तो एक सलीब हूँ जो दिल में काली कील ठोंकती है, उज्ज्वल प्रकाश नहीं लाती, जो भाग्य का अंत दिखलाती है उसका प्रारंभ या यौवन नहीं।

तुझे जलाकर राख न कर डालूँ?

उस नये शहर में।

चार आदमी गालीचे पर बैठे ताश खेल रहे हैं।

दो ऐक्टर,

दो सौदागर।

और जो तमाशा दिखा रहा है वह कलाकार है।

ताश खेलते-खेलते ऐक्टर और सौदागर लड़ना शुरू करते हैं। हाथापाई की नौबत आती है। गालीचा नोचा जाता है क्योंकि एक चाल में सौदागर भूल से या जान-बूझकर आठ आने अधिक ले गया था। मेरा गरेबान तार-तार हो चुका है क्योंकि जो आदमी बीच-बचाव करता है वही सबसे अधिक पिटता है।

फिर मैं सोचता हूँ इस बदमिज़ाजी को दूर करने का क्या तरीका है? गपशप? असंभव, ग्रामोफोन? वाहियात, चाय? लानत, शराब? वाह वाह!

सब लोग शराब पी रहे हैं। कलाकार की आँखें लाल हैं। सदैव हँसने और प्रसन्न रहनेवाला सुन्दर ऐक्टर, सदैव चुप रहनेवाले, कदरे

कम सुन्दर ऐक्टर से कह रहा है—"प्रेम? प्रेम? साले तू प्रेम क्या जाने, अभी कालेज का लौंडा है तू...ऐं......प्रेम का नशा मुझसे पूछ....... साली यह शराब बिल्कुल फीकी है......रानी को देखा है तुमने?"

"रानी १९४४ की नम्बर एक ऐक्ट्रेस है न?" मैंने पूछा।

"जी हाँ, वह—वही—साले तू क्या जाने....वह मेरी प्रेमिका है ...समझे?....ऐं! मैंने उसके लिए अपने माँ-बाप से गालियाँ खाईं... रकीबों से कई लड़ाइयाँ लड़ीं.......अपना घर-बार छोड़ दिया....... यह अँगूठी....साले देखते हो....ये कमीज़ के बटन....यह कफ़ बटन.... ये सब सोने के हैं, साले तू क्या जाने...ये सब उसने दिये हैं........ उपहार....लेकिन मैं उससे शादी नहीं करूँगा। कभी नहीं करूँगा।" उसने निश्चयपूर्ण स्वर में कहा।

"क्यों?"

"वह मुझे चाहती है लेकिन वह मुझसे बहुत अमीर है........वह मुझसे शादी करना चाहती है, पर मैं मर जाऊँगा, उससे ब्याह नहीं करूँगा।"

"तुम्हें उससे प्रेम नहीं?" एक सौदागर ने पूछा।

"भई, घर आती लक्ष्मी क्यों छोड़ते हो?" दूसरे सौदागर ने पूछा।

ऐक्टर ने मुट्ठियाँ भींचकर कहा—"मैं जो हूँ वहीं रहूँगा। मैं उससे प्रेम करता हूँ लेकिन उसका दास बनकर नहीं रह सकता। मैं उसका प्रेम चाहता हूँ धन नहीं, उख़।" ऐक्टर ने ज़ोर से गालीचे पर हाथ मारकर कहा और फिर कहकहा लगाकर हँसने लगा।

गालीचा काँप उठा। उसका रंग विचित्र-सा हो गया।

"और शराब दे हरामज़ादे!" वह अपने खाली गिलास को टटोल रहा था।

मैंने कहा—"रानी! अरे भई आज ही तो मैंने समाचारपत्र में पढ़ा है कि रानी ने एक अमेरिकन से शादी कर ली है।"

ऐक्टर ने धीरे से शराब का गिलास गालीचे पर लुढ़का दिया।

उसकी अँगुलियाँ काँच के स्तर पर दृढ़ता से जम गईं। काँच उसकी अँगुलियों को काटता हुआ टुकड़े-टुकड़े हो गया।

वह रुँधे हुए कण्ठ से बोला—"यह झूठ है, बिल्कुल झूठ है।"

कलाकार ने मेज़ पर से समाचारपत्र उठाकर पढ़ा।

ऐक्टर का चेहरा !....वह गालीचे पर दोनों कुहनियाँ टेके मेरी ओर देख रहा था.......उसके चेहरे का रंग बदलने लगा। उसका चेहरा सुता जा रहा था। ममी के नयन-नक्श उभर रहे थे।

"यह झूठ है, बिल्कुल झूठ है" वह फिर चिल्लाया। फिर एकदम चुप हो गया। दूसरा ऐक्टर उसके गिलास में शराब उँड़ेलने लगा। वह अब भी चुप था, परन्तु पहला ऐक्टर गालीचे से लगकर सिसकियाँ भर रहा था। फिर उसने गालीचे पर कै कर दी......मुझे गालीचे का रंग उड़ता हुआ मालूम हुआ। सुर्ख से श्वेत और फिर पीला। जैसे यह गालीचा न हो, जीवन का कफ़न हो।

रानी ! रानी ! रानी !

सुबह मैंने गालीचा धुलवाया और साफ कराकर फिर कमरे में रखा कि मेरी प्रेमिका कमरे में प्रविष्ट हुई। यह मेरी नये शहर की प्रेमिका थी। यहाँ आकर कलाकार ने फिर प्रेम कर लिया था। प्रेम करना कितना कठिन है परन्तु जब एक बार प्रेम की मृत्यु हो जाय तो उसके बाद प्रेम करना कितना सहल हो जाता है ! है न ? मरदूद बोलते क्यों नहीं हो ? उत्तर दो। मेरी प्रेमिका के ओंठ मोटे थे, गाल भी मोटे थे, शरीर भी मोटा था, हँसी भी मोटी थी, बुद्धि भी मोटी थी। वह औरत न थी एक दुहरा-तिहरा गालीचा थी। आज उसने अपने बालों की दो चोटियाँ बना डाली थीं और उनमें चमेली के फूल सजाये थे।

वह गालीचे पर आकर बैठ गई।

मैंने उसका मुँह चूमकर कहा—"आज तो तुम क्लियोपेट्रा को भी मात दे रही हो।"

"क्लियोपेट्रा क्या है ?" उसने पूछा।

"मिश्र की साम्राज्ञी।"

"मिश्र ?"

"हाँ मिश्र! वह देश जहाँ मरने के बाद अहराम तैयार होते हैं और मृतकों की ममियाँ तैयार की जाती हैं....भगवान करे तुम्हारी मृत्यु भी क्लियोपेट्रा की तरह हो।"

"हाय कैसी बातें करते हो ? क्या हुआ था उसे ?"

"साँप से डसवा कर मर गई थी।"

वह एक हल्की-सी चीख़ मार कर मेरे निकट आ गई। "डराते हो मुझे" उसने मेरी बाँह पकड़ कर कहा। फिर वह हँसी। अपनी मोटी भद्दी हँसी। जैसे भैंस जुगाली कर रही हो....फिर उसने अपने ओठ मेरे आगे बढ़ा दिये जैसे कोई उदार जाट किसी अपरिचित राही को गन्ना चूसने को दे दे।

मैंने गन्ना चूसते हुए कहा—"यह गालीचा जीता एक बार है लेकिन मरता बार-बार है....आह....यह मौत बार-बार क्यों आती है ....अब आ भी जाय अन्तिम मौत।"

"आज यह तुम बार-बार मौत का वर्णन क्यों कर रहे हो ?" वह मिनमिनाई।

"कुछ नहीं, तुम नहीं समझोगी" मैंने कहा—"हाँ, यह तो बताओ आज तुम्हारे ताज़ा ओठों से, आँखों से, बालों से यह कैसी सुन्दर महक निकल रही है ?"

"कुछ नहीं" वह हँस कर बोली—"आज खोपरे का सुगंधित तेल लगाया है।"

मैंने गालीचे की ओर कनअखियों से देखा। उसका रंग उड़ता जा रहा था। बेचारा एक बार फिर मर रहा था। उसकी मृत्यु मुझसे देखी न जाती थी। मैं घबरा कर कमरे से बाहर निकल गया।

सीधा स्टेशन पर पहुँच गया। इरादा था कि जी भर कर बियर पियूँगा। केवल अपने गुर्दों ही को नहीं अपनी आत्मा को भी जुलाब

दूँगा ताकि यह सारा कूड़ा-कंकट बह जाय। निकल जाय। तबीयत हल्की हो जाय।

स्टेशन पर बियर से पहले रूप मिल गई।

"अरे, तुम कहाँ?"

"जूनागढ़ गई थी पहाड़ पर।"

"और कवि?"

वह खाँसकर बोली—"उसने मुझे छोड़ दिया है।"

"छोड़ दिया है, क्यों?"

"मुझे क्षयरोग है, जूनागढ़ गई थी न?"

उसकी नज़रों में हरे रंग का समुद्र था और एक पीलियामय सूखा चेहरा भंवर में डुबकियाँ खा रहा था। फिर वह चेहरा भी गायब हो गया। अब कवि का सड़ा-बुसा चेहरा लहरों में तैरने लगा। कवि का चेहरा सिर हिलाकर कह रहा था "हूँ।"

मैंने कहा—"कहाँ है वह हरामज़ादा?"

"जाने दो" वह विनयपूर्ण स्वर में बोली—"उसे गाली न दो ....मुझे उससे अब भी प्रेम है।"

"लेकिन।"

"हाँ" वह बोली—"इस लेकिन के बाद भी—अब मैं अपने घर जा रही हूँ—मायके—आराम से मरूँगी।"

"नहीं नहीं" मैंने सख्ती से कहा—"अब तुम्हें नहीं जाने दूँगा। जीवन ने तुम्हें मुझसे छीन लिया। अब मृत्यु के दरवाज़े तक हम दोनों एक साथ चलेंगे और यदि इस संसार के बाद कोई संसार है तो शायद...."

वह हँसी। वही उज्जवल हँसी। वही संदली चेहरा, वही दमकता हुआ कुमकुम।

मैंने उसकी बाँह पकड़ कर कहा—"घर चलो रूप। जीते जी

तुमने मुझे अपने साथ न रहने दिया। अब मृत्यु के कुछ क्षण तो प्रदान कर दो।"

वह मुस्कराई। बोली—"तुम नहीं जानते ? प्रेम जीवन में और मृत्यु में भी एक-सा व्यवहार करता है।"

गाड़ी ने सीटी दी।

वह बोली—"मुझे आशा न थी कि तुम कभी मिलोगे शोक है कि मैं यहाँ रुक नहीं सकती। हाँ, यह पुस्तक तुम्हें दे सकती हूँ, अल्के की कवितायें।"

गार्ड ने झंडी दिखाई।

वह अपने डिब्बे की ओर चल दी। मैं उसके चेहरे की ओर न देख सका। मेरी आँखें फिर उसके पाँव पर गड़ गईं। वे पाँव चलते गये, चलते गये, दूर जाते हुए भी मानो निकट आते गये। बिल्कुल मेरी छाती पर आ गये और मैंने उन्हें उठाकर अपनी छाती के भीतर छिपा लिया।

मैंने नज़र उठाई।

गाड़ी जा चुकी थी।

प्रेमिका अभी तक मेरी बाट देख रही थी। बोली—"कहाँ चले गये थे ?"

मैं चुप हो रहा।

"यह कौन-सी पुस्तक है ?"

"अल्के की।"

"क्या ?"

"एक कवि की कविताएँ हैं।"

"मुझे सुनाओ क्या कहता है यह ?"

मैंने पुस्तक खोली। पन्द्रहवाँ पन्ना आँखों के सामने आया। मैंने धीरे-धीरे पढ़ना आरम्भ किया—"ऐ भगवान ! तूने जीवन अपनी

इच्छानुसार दिया, अब मृत्यु तो मेरी इच्छा के अनुसार प्रदान कर दे। तुमसे और कुछ नहीं चाहता हूँ भगवान।"

"फिर मृत्यु?" वह बोली—"बुरा शकुन है" उसने पुस्तक मेरे हाथ से छीन कर परे रख दी और अपने ओठ मेरी ओर बढा दिये। गालीचा उबल रहा था। बिल्कुल आग था। शोलों की नदी, पीप का समुद्र, विष का खौलता हुआ चश्मा। मैंने उससे पूछा—"तुम सलीब हो, तुमने मनुष्य के बेटे को मसीह बनाया है, बताओ मुझे क्या बनाओगे?"

गालीचे ने कहा—"जो तुम स्वयं बन चुके हो—एक अहराम—एक खोखला अहराम जिसकी छाती में ममियाँ दफ़न हैं।"

मैंने अपनी प्रेमिका से कहा—"मेरा जी चाहता है इस गालीचे को जलाकर राख कर दूँ।"

वह बोली—"हाँ, पुराना तो हो गया है।"

"लेकिन" मैंने रुककर दुःखी स्वर में कहा—"मेरे पास तो यही एक ही गालीचा है और यही एक जीवन है। न इसे बदल सकता हूँ, न इसे......"

यह कहकर कलाकार गन्ना चूसने लगा।

मछली-जाल

गाँव सोया पड़ा था। भूरे-भूरे मछली-जाल धूप में सूखने के लिए लकड़ी की ऊँची खपाचियों पर तने हुए थे और उनके शतरंजी साये-तले बूढ़े माहीगीर सो रहे थे। तट की रेत में आधे से अधिक भीतर धँसा हुआ श्वेत शिवाला अपने कलस पर श्वेत झंडा फहरा रहा था। ऊंचे टीले पर नारियल का एक वृक्ष था जिसके पास एक गधा चुपचाप खड़ा था। उससे परे बाढ़ थी जिसके भीतर नारियल का झुण्ड था जो दूर गाँव तक चला गया था और जिसने माहीगीरों के छपरों को नज़रों से ओझल कर दिया था।

यहाँ तट की रेत कितनी नर्म और ठंडी थी। तट से जितनी दूर जाओ रेत गर्म और सख्त होती जाती है और टीलों के किनारे जहाँ समुद्री झाग सूख गया था और छोटी-छोटी सीपों और शंखों की पंक्ति लगी हुई थी वहाँ रेत पर पाँव रखने से पतले काँच के टूटने का-सा स्वर उत्पन्न होता था और पाँव एक विचित्र प्रकार की गुदगुदाहट से परिचित होते थे। गुल देर तक उन टीलों के किनारे-किनारे चलता रहा और उस आनन्द का मज़ा लेता रहा और निश्चिंततापूर्वक चारों ओर देखता रहा, और चलते-चलते बीच में रुक-रुककर सुन्दर सीपें और घोंघे एकत्रित करता रहा। तट एक दायरा-सा बनाता हुआ दूर तक चला गया था। इस दायरे के एक सिरे पर यह गाँव था और दूसरे

सिरे पर उसका अपना गाँव। बीच में यह लम्बा कटा-फटा तट था, ऊँचे-ऊँचे टीलों से भरा हुआ। गुल चलते-चलते एकाएक ठिठक गया। एक बड़े टीले की ओट में एक नाव औंधी पड़ी हुई थी और उसके निकट एक लड़की औंधे-मुँह लेटी हुई थी। गुल ने उसे सिर से पाँव तक देखा। उसने उस लड़की के नन्हें-नन्हें पाँव मेहँदी में रचे हुए देखे। उसने उसके स्याह अबरक की तरह चमकते हुए जूड़े में एक बहुत बड़ा फूल देखा जिसका रंग बिल्कुल सोने का-सा था। एक हाथ ठोड़ी के नीचे था और दूसरा तट की रेत पर पड़ा था। गुल ने उस हाथ की चूड़ियाँ गिनीं। गहरे सुर्ख़ काँच की सात चूड़ियाँ थीं। उसने उन्हें एक बार फिर गिना—सात ही थीं। परन्तु अब के इसे यह हाथ बहुत सुन्दर मालूम हुआ। उसने यह हाथ देखा। गालों पर सोई हुई पलकों की सुसज्जित पंक्ति को देखा। उन नन्हें-नन्हें नथनों को देखा जो श्वास की लहरों से बारीक सीपों की तरह हिल रहे थे और फिर उस हाथ को देखा जो उसकी ओर फैला हुआ तट की रेत पर पड़ा था और जिसकी कलाई में सात चूड़ियाँ थीं। और वह वहीं रेत पर उसके निकट बैठ गया और काँच की उलझी हुई चूड़ियों को अलग-अलग करने लगा।

"हटो मुझे सोने दो" लड़की ने उसी प्रकार लेटे-लेटे हिले बिना कहा और गुल एक क्षण के लिए चौंककर उछल पड़ा। उसका ख़याल था कि लड़की सो रही है। लड़की ने फिर कहा—"तुम कब के यहाँ खड़े हो? मैंने सोचा कि तुम मुझे देखकर स्वयं ही चले जाओगे, मुझे नींद आ रही है। देखो कितनी अच्छी धूप है....उफ़....उफ़....उफ़।"

लड़की ने अब अपनी दोनों बाहें रेत पर फैला दीं और अपनी ओर से खूब जम कर सो गई।

गुल ने उसके जूड़े में सजे हुए सुनहले फूल को देखा और फिर काँच की चूड़ियाँ गिनने लगा। जब पूरी सात गिन चुका तो उसने धीरे से उसके जूड़े से वह फूल निकाल लिया।

वह लड़की फिर उसी तरह लेटे-लेटे बोली—"तुम अभी तक गये नहीं ?"

गुल ने कहा—"मैं तुम्हारे लिए शफ़क़ (सूर्यास्त) का फूल लाया हूँ—देखो।"

लड़की चौंककर उठ बैठी। उसके हाथ अपने जूड़े पर गये। गुल का ख़याल ठीक निकला। लड़की बहुत सुन्दर थी।

लड़की ने कहा—"लाओ मेरा फूल, मुझे दे दो।"

गुल ने फूल आगे बढ़ाया।

लड़की ने हाथ आगे बढ़ाया।

गुल ने हाथ पीछे हटाकर कहा—"ऊँहूँ, ऐसे नहीं। मैं इसे तुम्हारे जूड़े में लगाऊँगा।"

"नहीं" लड़की ने बड़ी सख़्ती से कहा।

"नहीं, ? तो मैं जाता हूँ—खुदा हाफ़िज़ !"

गुल फूल अपने हाथ में लिये दो कदम चला।

लड़की बोली—"अच्छा, आ जाओ।"

वह अपने जूड़े में फूल लगवाने के लिए एक बुत की तरह अकड़ कर बैठ गई।

इससे उसकी छाती का उभार और भी तन गया और कमर की कमान और भी प्रकट हो उठी और गुल ने सोचा—इस लड़की का नाम ज़रूर पूछना चाहिये। उसने लड़की के जूड़े में फूल लगाते हुए कहा—"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"हम नहीं जानते...." लड़की ने कहा।

"क्यों नहीं जानते ?"

"मैं नहीं बताऊँगी।

"क्यों नहीं बताओगी ?"

लड़की ने क्रोध से अपनी छाती पर हाथ रख लिए और कहा—"अब तुम चले जाओ। यह सामने टीले पर मेरा गाँव है। अभी शोर

मचाऊँगी तो इतने लोग इकट्ठे हो जायँगे कि तुम्हारे शरीर पर मांस की एक बोटी भी नहीं मिलेगी। यह तुम्हारा शरीर जो इस समय समुद्री मछली की तरह पला हुआ दिखाई दे रहा है इसमें केवल मछली का काँटा रह जायगा।"

फूल जूड़े में सज गया।

लड़की ने हँसकर कहा—"मगर मुझे तो यह भी मालूम नहीं कि तुम्हारे अन्दर वह मछली का काँटा भी है कि नहीं; बिना काँटे के भी तो मछलियाँ होती हैं न !"

गुल ने एकाएक उसे अपनी बलिष्ठ बाँहों में ले लिया। लड़की तड़प करे उछली और उसका हाथ ज़ोर से गुल के गाल पर पड़ा। गुल ने तुरन्त एक हाथ लड़की के मुँह पर रख दिया और वे दोनों लड़ने लगे। लड़की उसकी पकड़ से मुक्त होना चाहती थी और वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना चाहती थी, परन्तु गुल की जकड़ बड़ी मज़बूत थी और उसका दूसरा हाथ बड़ी सख्ती से उसके मुँह पर जमा हुआ था। गुल जानता था कि यदि उसने लड़की को चिल्लाने का अवसर दिया तो उसकी जान की खैर नहीं। एकाएक उसे मालूम हुआ कि लड़की उसकी जकड़ से निकली जा रही है। वह दोनों बाँहों से लड़ रही थी और गुल केवल एक बाँह से काम ले रहा था और वे दोनों लोटते-पोटते बिलकुल नाव के निकट चले गये। लड़की ने कोशिश करके दोनों हाथों से गुल का एक हाथ पीछे मरोड़ दिया। अब एक ओर नाव थी। गुल उधर न मुड़ सकता था। दूसरी ओर टीला था और बीच में गुल फँस गया था। लड़की ने जैसे-तैसे अपने मुँह पर से हाथ हटा लिया। बोली—"अब बताओ।"

उसने गुल के मुँह पर दो घूँसे जमाये। गुल तड़प कर अपने मरोड़े हुए हाथ पर ज़ोर देकर जो उठा तो औंधी नाव सीधी हो गई, और लड़की उसके ऊपर गिर गई। गुल की बाँह से रक्त बह रहा था। नाव की एक कील चुभ गई थी परन्तु उसने हँसकर करवट

बदल डाली। अब लड़की रेत पर गिर गई और उसकी दोनों बाँहें गुल की पकड़ में थीं। गुल ने अपने ओठों को उसके ओठों के बिल्कुल निकट ले जाकर कहा—"अब कहो।"

लड़की के ओठ यों फड़क रहे थे जैसे मछली बहुत उथले पानी में हाँपती है। उसने अपने ओठ उसके ओठों से मिला दिये। एक बार, दो बार—और फिर उसे ऐसा महसूस हुआ जैसे मछली बहुत गहरे पानी में पहुँच गई हो। जहाँ बिल्कुल शांति है और सुख है, और वे दोनों गहरे पानी में एक-दूसरे से जलपरियों की तरह लिपटे हुए, आँखें बन्द किये, ओठों-से-ओठ मिलाये तैरते चले जा रहे हैं और उनके इर्द-गिर्द सुन्दर चाँदी-जैसी मछलियाँ घूम रही हैं और मूँगे के सुन्दर द्वीपों में असफंज आश्चर्य से अपनी आँखें खोले उनकी ओर ताक रहे हैं और बाँके छरेरे पौदों की डालियाँ प्रसन्नतावश धीरे-धीरे हिल रही हैं और उनके शरीर आप-ही-आप डोलते हुए हरे और काले पत्तों के झूले में झूलते हुए, रेशमी डालियों को छूते हुए, तैरते हुए उन सुन्दर महलों की ओर जा रहे हैं जहाँ सीपों में सुन्दर मोती निवास करते हैं और रंग-रंग के घोंघे और संख अपने मरमर के दरवाज़ों से बाहर झाँक कर देखते हैं जिसके ऊपर कहीं समुद्र के रोशनदान से नीली-नीली मध्यम-मध्यम किरणें झिलमिल-झिलमिल करती हुई आ रही हैं।

लड़की ने एक गहरा श्वास भरा और उसके हाथ की मुट्ठियाँ आप-ही-आप खुलती गईं।

गुल ने धीरे से पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"महर" लड़की ने बड़े चीण स्वर में कहा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"मेरा नाम गुल है" उसने धीरे से कहा।

"गुल? गुल..."लड़की के काँपते हुए ओठ कहने लगे..."गुल महर......."

"नहीं, महरगुल" गुल ने उत्तर दिया और लड़की को सहारा देकर उठाया।

लड़की बोली—"तुम क्या करते हो ? कहाँ रहते हो ?"

गुल ने कहा—"मैं उस सामने के गाँव में रहता हूँ और मसीरा तैयार करता हूँ।"

"मसीरा क्या होता है ?"

गुल ने कहा—"मसीरा एक तरह की शराब होती है। बिल्कुल ऐसी जैसे तुम्हारे ओठों में होती है नरम, गरम, स्वच्छ, निर्मल, मीठी-मीठी चाश्नी लिये हुए......."

महर ने कहा—"अगर तुमने अब कोई शरारत की तो मैं वाक़ई गाँववालों को बुला लूँगी।"

गुल हँसकर बोला—"मैं सब जानता हूँ। गाँववाले हैं कहाँ ? वे सब तो मछलियाँ पकड़ने गये हैं।"

महर ने कहा—"तुम मसीरा क्यों बनाते हो, मछलियाँ क्यों नहीं पकड़ते ?"

गुल ने कहा—"मैं मसीरा तैयार करता हूँ। माहीगीर मछलियाँ पकड़ते हैं और फिर एक ही जगह दस्तरखान पर ये दोनों चीज़ें इकट्ठा हो जाती हैं। मछली और मसीरा.......गुल और महर........"

महर ज़रा परे सरक गई, बोली—"देखो मैं तुमसे कहती हूँ मेरे निकट मत आओ। तुम नहीं जानते मैं कितनी खतरनाक लड़की हूँ।"

गुल ने पूछा—"कितनी ख़तरनाक हो ?"

महर ने कहा—"मेरे लिए तीन खून हो चुके हैं अब तक।"

गुल ने कहा—"तो अब चौथे की तैयारी समझो।"

महर ने कहा—"लोग कहते हैं कि मैं संसार की सबसे सुन्दर लड़की हूँ।"

गुल ने कहा—"हर गाँव में एक ऐसी लड़की होती है जो संसार की सबसे सुन्दर लड़की होती है। और हर लड़की जो पहली बार

अँगड़ाई लेती है संसार की सबसे सुन्दर लड़की बन जाती है। लेकिन सुन्दरता में मेरी प्रेमिका का बदल नहीं है।"

"कौन है वह?" महर ने आँखें झपकाकर पूछा।

"मसीरा।" गुल ने हँसते हुए कहा।

महर ने कहा—"तुम्हारा काम अच्छा नहीं है, इसे छोड़ दो।"

"तो क्या करूँ?"

"मछलियाँ पकड़ा करो।"

गुल ने महर की कमर में हाथ डाल दिया।

महर ने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा—"यह क्या कर रहे हो?"

"मछली पकड़ रहा हूँ।" गुल ने उत्तर दिया।

महर हँसने लगी। हँसते-हँसते बोली—"मैं किस आफत में फँस गई। मेरा मंगेतर इस वक्त मुझे देख ले तो मुझे जान से मार डाले।"

"तुम्हारा मंगेतर भी है?"

"हाँ, उसका नाम अब्दुल है।"

"क्या अब्दुल बहुत भयानक आदमी है?"

"हाँ, सारे गाँव में उस-जैसा तगड़ा जवान नहीं है.......मगर" महर ने गुल की ओर देखते हुए ईर्ष्यापूर्वक कहा—"मगर वह तुम्हारी तरह सुन्दर नहीं है।" और इतना कहकर महर ने गुल के सिर में बहुत-सी रेत डाल दी। गुल अपने बालों को झटक कर बोला—"मैं अब्दुल से मिलना चाहता हूँ।"

महर ने कहा—"वह तुम्हें जान से मार देगा।"

"इसीलिए तो मिलना चाहता हूँ।"

महर ने कहा—"मैं जानती हूँ अब तुम उससे मिले बिना नहीं रहोगे और फिर तुम्हारी लाश समुद्र के गहरे पानी में मछलियाँ खा जायँगी।"

गुल ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपने पाँव रेत में गाड़ दिये और घोंघे और सीपें एकत्रित करके घरौंदा बनाने लगा। फिर महर

ने भी अपने मेंहदी-रँगे पाँव रेत में डुबो दिये और अपना छोटा-सा घरौंदा बनाने लगी। घरौंदा बनाने में वह बड़ी निपुण मालूम होती थी। बहुत शीघ्र उसने रेत का एक सुन्दर महल बना लिया। उसकी पतली-पतली अँगुलियाँ बड़ी तेज़ी से चल रही थीं। गुल उन्हें देखता ही रहा और उसका अपना घरौंदा अपूर्ण ही रहा। और जब महर का घरौंदा बन गया तो उसने भी जल्दी-जल्दी अपने मोटे, खुरदरे, बड़े-बड़े हाथों से एक बेडौल, बेढंगा-सा घरौंदा तैयार कर डाला जो सुन्दर महल की अपेक्षा एक कुरूप अंधकारमय गुफा-सी मालूम होती थी।

महर ने गुल के घरौंदे को लात मारकर कहा—उँह! यह भी कोई घरौंदा है।"

गुल का घरौंदा ढह गया। उसने महर के घरौंदे को लात मार दी और कहा—"उँह! यह बहुत अच्छा है।"

महर ने फिर गुल को बालों से पकड़ लिया और बहुत-सी रेत उसके सिर पर डाल दी। और रेत उसके सिर में, उसके कानों में, उसकी आँखों में, उसके नथनों में, उसके मुँह में चली गई और उसने इसी हालत में बालों को एक बार फिर झटक कर महर को पकड़ लिया। अबके उन रसीले ओठों का मज़ा ही कुछ विचित्र था। रग-रग में, नस-नस में रेत के किरकिरे अणु एक विचित्र प्रकार की गुदगुदी-सी उत्पन्न कर रहे थे।

एकाएक दूर समुद्र के पानी से किसी के गाने की आवाज़ आई। महर ने पलट कर देखा—तट के दायरे के पश्चिमी कोने पर एक पाल वाली नाव नज़र आने लगी थी। महर ने नाव को पहचान कर कहा—"अब्दुल आगया।"

गुल की बाहें तन गईं। बोला—"अच्छा ही है।"

"नहीं, तुम चले जाओ।"

"नहीं!"

"देखो मैं कहती हूँ। इस वक्त ठीक नहीं है। मैं अब खूनखराबी नहीं चाहती....नहीं!"

महर ने गुल की ठोड़ी को हाथ लगाकर कहा—"महर आज तक किसी की न हो सकी; लेकिन आज से वह तुम्हारी हो जायगी......."

गुल महर की ओर देखता रहा। बोला—"सच कहती हो?"

महर ने कहा—"देख लेना, अब तुम चले जाओ।"

गुल ने उठते हुए कहा—"फिर कब मिलोगी?"

"कल मिलूँगी। कब्रस्तान के पीछे नारियल का जो झुण्ड है न, वहाँ मेरा इन्तज़ार करना। जब चाँद ठीक झुण्ड के ऊपर पहुँच जायगा, मैं आजाऊँगी।"

गुल उठकर चला गया। दूर की नाव निकट आती गई और निकट से जानेवाला दूर होता गया। आनेवाली नाव तट से आ लगी और जानेवाला एक बिन्दु बनकर गायब हो गया। महर ने एक गहरा श्वास भरा। कोई तट के उथले पानी में चलता हुआ उसकी ओर आ रहा था। महर वहीं बैठी रही। बड़े-बड़े पाँव, बड़ी-बड़ी टाँगें चलती हुई उसके निकट आकर रुक गईं। महर उठ खड़ी हुई और अब्दुल की ओर देखने लगी। अब्दुल ने केवल एक निकर पहन रखी थी। धूप में उसका स्याह बलिष्ट शरीर एक सुन्दर पतवार की तरह चमक रहा था। उसके नथने फैले हुए थे। गाल उभरे हुए और आँखें तंग गढ़ों में चमक रही थीं। अब्दुल ने टूटे हुए घरौंदों की ओर देखा और पूछा—"यह कौन था?"

महर ने बड़ी बेपर्वाही से उत्तर दिया—"एक अजनबी था।"

अब्दुल ने बड़ी सख्ती से महर का हाथ पकड़ लिया?

महर ने ज़ोर से अब्दुल का हाथ झटक दिया और आगे बढ़कर गाँव की ओर चलने लगी। थोड़े समय के लिए अब्दुल उसे घूरता रहा फिर मुस्कराकर उस के पीछे-पीछे हो लिया।

× × ×

यों तो सारा संसार चाँद को नारियल के झुंड पर लटका हुआ देख कर प्रसन्न होता है परन्तु यह कुछ प्रतीक्षा करनेवाले ही जानते हैं कि चाँद कितनी देर में नारियलके झुण्ड के ऊपर पहुँचा है। वह जामन के पेड़ में बड़ी जल्दी पहुँच जाता है। अन्य पेड़ों की डालियों में पहुँचते उसे देर नहीं लगती। आम की शाखाओं में पहुँचते उसे अधिक समय नहीं लगता, परन्तु जब वह इन सब वृक्षों से ऊँचा होकर नारियल के झुण्ड में पहुँचता है तो रात आधी से अधिक निकल चुकी होती है। लोग सो जाते हैं। घरों के दीपक बुझ जाते हैं। माहीगीरों के समुद्री गीत मौन हो जाते हैं। चारों ओर चुप्पी छा जाती है और इस चुप्पी में केवल चमेली की सुगन्ध रहती है और समुद्र की गूँज बहती है और चाँदनी की मदिरा बहती है। इस सुगन्ध में, इस गूँज में, इस मदिरा में सारा संसार सो जाता है। तट के टीलों की चमकती हुई रेत किसी की प्रतीक्षा करते-करते सो जाती है, तब कहीं चाँद ऊँचे नारियल के झुंड में आता है और किसी के सुबक, कुँवारे पाँव सूखे पत्तों में जीवन जगाते हुए चले आते हैं और किसीकी धड़कती हुई छाती किसी की धड़कती हुई छाती से लग जाती है। और किसी के प्रतीक्षा करते हुए, जलते हुए ओठ किसीके मृदु ओठों से मिल जाते हैं और कंधों पर और कानों के निकट और गर्दन से छूते हुए घने बालों का गहरा सुगंधित अंधकार दूर तक आत्मा और शरीर के भीतर काँपते हुए सायों की ओर बढ़ता चला जाता है और कोई धीरे से कहता है—"गुल" और कोई धीरे से उत्तर देता है—"महर।"

और फिर कोई कुछ नहीं कहता। कोई कुछ नहीं सुनता। चारों ओर की गहरी चुप्पी दो दिलों की धड़कनों को, दो गहरे भावों को, दो तेज़-तेज़ चलते हुए साँसों को प्रेम के पवित्र लोबान के धुँए की तरह चाँदनी में घोल देता है। और यह चाँदनी और यह चुप्पी और यह समुद्र एक गूँज बनकर उन अंधकारमय महलों में पहुँच जाती है जहाँ कोमल सीपें अपना मुँह खोले प्रेम के मोती की प्रतीक्षा में हैं और

सुन्दर घोंघे अपने स्वप्नमय मरमर के घरों से निकलकर समुद्री पौदों का सहारा लिए खड़े हैं और उस अमिट प्रकाश को देख रहे हैं जो दूर ऊपर समुद्र के रोशनदान से काँपता, थरथराता, झिलमिलाता हुआ आ रहा है......

चाँद बहुत देर तक दूर ऊपर नारियल के झुण्ड में किसी चंचल सुन्दरी के चाँदी के बुन्दे की तरह काँपता रहा और दूर नीचे वे दोनों बहुत देर तक एक दूसरे की गोद में काँपते रहे। फिर एकाएक जैसे वे काँप कर एक दूसरे से अलग हो गये—कोई और व्यक्ति उस झुंड की ओर चला आ रहा था और वे दोनों एक दूसरे का सहारा लिए नारियल के तने से लग गये। उनके चारों ओर नारियल के वृक्ष खड़े थे और वह स्याह व्यक्ति क्रोध से आगे बढ़ता चला आ रहा था। एकाएक झुंड के एक खुले भाग में से उसे गुज़रते हुए देखकर महर ने उसे पहचान लिया और एक दबी-सी चीख़ उसके मुँह से निकल गई और फिर उसने अपने मुँह पर हाथ रख लिया। परन्तु अब्दुल ने वह चीख़ सुन ली थी और अब वह सीधा उन्हीं की ओर चला आ रहा था। गुल उसे अपनी ओर आते हुए देख रहा था और अपनी बाहें तोल रहा था। अब्दुल अब एक खुले स्थान में था जहाँ चारों ओर से नारियल छट से गये थे। गुल ने महर को छोड़ दिया और आगे बढ़ गया। उसने महर के हाथ की एक हलकी-सी पकड़ भी महसूस की; परन्तु वह रुका नहीं, आगे बढ़ गया।

अब दोनों एक दूसरे के सम्मुख थे।

कुछ कहे सुने बिना वे एक दूसरे से गुथ गये। किसी ने कोई आवाज़ नहीं निकाली। कोई किसी से बोला नहीं। किसी ने किसी को सहायता के लिए नहीं पुकारा। वे दोनों एक दूसरे से गुथ गये और अपने शरीर की पूरी शक्ति से लड़ने लगे। उनके चारों ओर पूर्ण चुप्पी थी और नारियल के वृक्ष भी चुपचाप खड़े वह दृश्य देख रहे थे और महर अपनी छाती पर हाथ रखे चुपचाप वह दृश्य देख रही थी और वे दोनों

बड़ी तन्मयता परन्तु हिंसकता से लड़ रहे थे और इस चुप्पी में केवल पत्तों के चुरमराने का स्वर आता या कहीं ज़मीन पर कोई सूखी टहनी चटख जाती अन्यथा पूर्ण चुप्पी थी, और उन दोनों लड़नेवालों के तेज़ तेज़ तेज़ श्वास। कभी एक ऊपर होजाता कभी दूसरा। गुल की दाहिनी आँख के ऊपर से रक्त बहने लगा और उसके चेहरे पर फैलने लगा और वे दोनों लड़ते रहे। आखिर एक दाव में अब्दुल बेबस होकर रह गया। वह गुल से अधिक तगड़ा था; परन्तु गुल उससे अधिक फुर्तीला था। गुल उसकी छाती पर चढ़ बैठा और उसका छुरा चांदनी में बिजली की तरह चमका परन्तु महर ने तुरंत बड़ी मज़बूती से उसका हाथ पकड़ लिया। महर का अपना हाथ घायल होगया।

महर ने कहा—"नहीं......अब चौथा खून नहीं होगा।" उस समय उसे अपना स्वर बड़ा विचित्र लगा।

गुल अब्दुल की छाती पर से उतर आया। अब्दुल धीरे से उठा। गुल हाथ में छुरा लिए अब्दुल की ओर देखता रहा। अब्दुल ने एक नज़र महर की ओर देखा। ऐसी निराशा, ऐसे दुख से देखा कि महर उन नज़रों की ताव न ला सकी। उसकी आँखें झुक गईं। फिर अब्दुल ने गुल की ओर देखा और अपने हाथों की ओर देखा। फिर उसकी बाहें गिर गईं और उसने अपनी गर्दन एक विचित्र ढंग से हिलाई और घूमकर चला गया। वह धीरे-धीरे चला जा रहा था। गुल और महर भी धीरे-धीरे उसके पीछे हो लिये। अब्दुल गाँव की ओर नहीं गया। वह वृक्षों के झुरमुट से निकलकर शिवालय के नीचे तट की ओर चला गया। थोड़ी देर तक वह एक ऊँचे टीले पर खड़ा रहा। फिर उसने घूमकर महर और गुल को नमस्कार किया और उछलकर तट के किनारे चला गया। यहाँ उसने एक पाल वाली नाव खोली। जाल को समेट कर नाव में रखा और नाव को समुद्र के भीतर ले गया।

महर ने चिल्लाकर कहा—"ठहरो, ठहरो।"

नाव दूर होती गई। वह चाँदनी के धारे पर बह रही थी। समुद्र के बीच में एक प्रधान सड़क-सी बनी हुई थी। यह प्रधान सड़क वहाँ जाती है जहाँ चाँद का देश है। विवश प्रेमों का देश। अब्दुल गाता हुआ उसी प्रधान सड़क पर हो लिया।

मेहर ने कहा—"ठहरो...ठहरो...ठहरो।"

रात की चुप्पी में मेहर की आवाज़ गूँज-गूँज कर टूट गई और फिर अब्दुल का गीत उभर आया। यह गीत उस मछली का मालूम होता था जिसके गले में बंसी का काँटा फँस जाय और कण्ठ से निकलने का नाम न ले।

मेहर रोने लगी।

गुल ने कहा—"रोती क्यों हो? वह अपने साथियों के पास गया है। आज चाँदनी रात है, आज सारे गाँववाले बीच समुद्र में जाकर जाल डालते हैं और मछलियाँ पकड़ते हैं। सुबह वह सब के साथ आजायगा, देख लेना।"

परन्तु अब्दुल सुबह सब के साथ नहीं आया। रात भर वह अपने साथियों के साथ मछलियाँ पकड़ता रहा और गीत गाता रहा और सब को हँसाता रहा। आज रात उसके जाल में बहुत-सी मछलियाँ आई। ढेरों के ढेर। ऐसी मोटी ताजी सुन्दर मछलियाँ इन माहीगीरों ने बहुत समय के बाद पकड़ी थीं। वे लोग बहुत प्रसन्न थे। प्रातःकाल जब सब लोग लौटने लगे तो अब्दुल ने कहा, मैं अभी देर से आऊँगा। तुमलोग चलो। अब्दुल ने अपनी मछलियाँ मेहर के लिए भिजवा दीं और कहा—ये सब उसे दे देना। इसमें भी कोई विचित्र बात नहीं थी जो किसी को संदेह होता और फिर वह सबसे अलग होकर समुद्र के उस भाग की ओर चला गया जिसके सम्बन्ध में कहा जाता था कि बड़े-से-बड़े तूफ़ान में भी वहाँ लहरें शाँत रहती हैं और जहाँ मछलियों ने घेरा बाँध कर कँवल का फूल बना रखा है। माहीगीर कभी उधर नहीं जाते। न कभी उन्होंने

उस स्थान को देखा है, केवल अपने पूर्वजों से उसके बारे में सुन रखा है कि पश्चिमी किनारे से दो मील आगे समुद्र के मध्य में वह स्थान है जहाँ शांत समुद्र के बीच एक भयानक भँवर चलता है और जिसके अन्दर मछलियाँ एक कंवल का फूल-सा बनाये हुए घूमती है।

अब्दुल चला गया। वह सुबह वापस नहीं आया। वह दोहपर को भी नहीं लौटा। शाम को उसकी लाश किनारे से आ लगी, और गाँववालों ने उसे उठाकर अपने कब्रस्तान में दफ़न कर दिया।